आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च

विवेक-शिखा

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख हिन्दी मासिकी

वर्ष : २३ अक्टूबर-२००४ अंक : १०

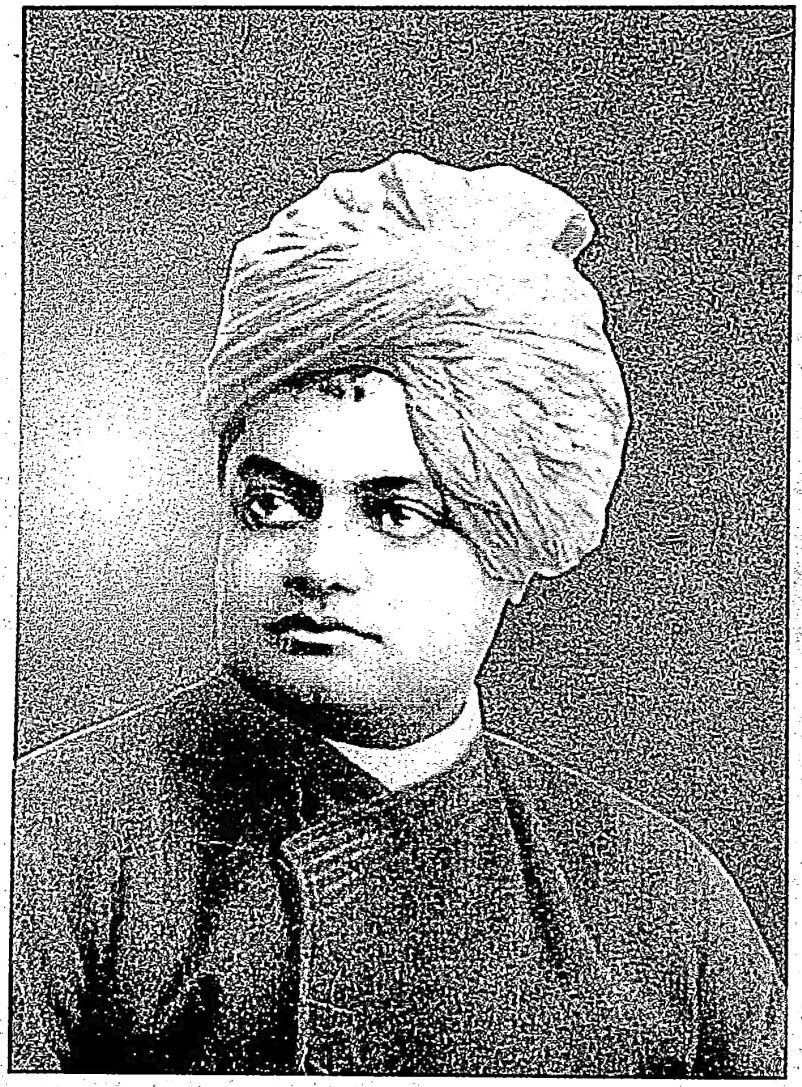

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा - ८४१ ३०१ (बिहार)

नम्र निवेदन

रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा, बिहार–८४१३०१

दूरभाष : ०६१५२-२२०७३९

श्रीरामकृष्ण देव के सोलह संन्यासी शिष्यों में मात्र एक ही बंगभूमि के बाहर के थे ओर उन्हें अपनी माटी में जन्म देने का श्रेय छपरा को प्राप्त हुआ । स्वामी अद्‌भुतानन्द नाम से विख्यात ये संन्यासी लाटू महाराज के नाम से परिचित हैं । इनके माता-पिता समाज के अत्यंत पिछड़े वर्ग के थे । शैशवावस्था में ही माता-पिता के देहान्त हो जाने के कारण उन्हें बाल-श्रमिक के रूप में अपने चाचा के साथ कोलकाता जाना पड़ा ।

दैवी कृपा से किशोर लाटू अभूतपूर्व आध्यात्मिक साधना के शिखर-पुरुष, सर्वधर्म समन्वय की प्रतिमूर्ति युगावंतार भगवान श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में आए । इन दोनों का मिलन भारत ही नहीं, विश्व के आध्यात्मिक जगत् के लिए एक ऐतिहासिक स्वर्णिम संगम था । यह केवल एक परम गुरु से एक निष्ठावान शिष्य का मिलन नहीं, वरन् भारत की एक युग-परिवर्तनकारी घटना थी, मानो भावी भारत की जाति-भेद विहीन सामाजिक संरचना का अद्‌भुत संकेत था ।

श्रीरामकृष्ण के निदेशन में गहन आध्यात्मिक साधना कर इस निपट ग्रामीण, निरक्षर युवक ने समाधि के उच्चतम सोपान पर ब्रह्मोपलब्धि कर आध्यात्मिक जगत में एक अद्वितीय, अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत किया । लाटू महाराज की इस अनोखी उपलब्धि को देखकर स्वामी विवेकानन्द ने ही उनका नाम स्वामी अद्‌भुतानन्द रखा ।

बिहार की मिट्‌टी धन्य है जिससे भगवान बुद्ध, महावीर जैन, सीता माई आदि के नाम जुड़े हैं । यह भूमि एक बार फिर से लाटू महाराज सरीखे सन्त को जन्म देकर धन्य हो गई है । आज स्वामी अद्‌भुतानन्द के जीवनचरित पर बंगला, हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्यान्य देशी-विदेशी भाषाओं में अनेक ग्रन्थों एवं लेखों का प्रकाशन हो रहा है । आध्यात्मिक जगत् में छपरा जिले को एक विशिष्ट गरिमा प्राप्त हुई है एवं वह दिन दूर नहीं जब छपरा एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल में परिवर्तित हो जाएगा ।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ ने रामनवमी २००३ को छपरा स्थित रामकृष्ण अद्‌भुतानन्द आश्रम का रामकृष्ण मिशन आश्रम के रूप में अधिग्रहण किया । आशा की जाती है कि रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा अपने पूर्ण सामर्थ्य से लाटू महाराज की स्मृति अक्षुण्ण रखने के साथ-साथ समाज-कल्याण के कार्यक्रमों में स्वयं को समर्पित कर देगा ।

हमारी तात्कालिक आवश्यकताएँ–

१. संत-निवास हेतु-------१० लाख रुपये
२. दरिद्रतम छात्रों के अध्यापनार्थ एक शेड हेतु ३ लाख रुपये
३. चिकित्सालय के लिए दवा एवं उपकरणों के हेतु-------१० लाख रुपये
४. अतिथि निवास के लिए--------३ लाख रुपये ।

कार्यक्रमों को सुचारु रूप से चलाने के लिए हमें धन-बल एवं जन-बल की आवश्यकता है, जिसका अभी नितान्त अभाव है । आपसे विनम्र निवेदन है कि आप हमारे कार्यों में सहायता प्रदान करने हेतु सहानुभूतिपूर्वक आगे आएँ । इस आश्रम को दिये गये दान आयकर की धारा ८० (जी) के अन्तर्गत आयकर से मुक्त हैं । चेक या ड्राफ्ट 'रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा, बिहार' के नाम से ऊपर दिए गए पते पर भेजें ।

भवदीय
स्वामी मुनीश्वरानन्द
सचिव

॥ उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ॥

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

अक्टूबर—२००४

सम्पादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक

ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा

वर्ष २३
अंक १०

वार्षिक ६०/— एक प्रति ६/—

आजीवन ग्राहकता शुल्क
(20 वर्षों के लिए) ७००/—
संरक्षक-योजना
न्यूनतम दान—१०००/—

—: सम्पादकीय कार्यालय :—

विवेक-शिखा

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर
छपरा : ८४१ ३०१ (बिहार)
दूरभाष : (०६१५२) २३२६३९

संस्थापक प्रकाशिका

स्व० श्रीमती गंगा देवी

इस अंक में

१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है ३

२. रे मन भजन किया कर ४
—डॉ० केदारनाथ लाभ

३. आत्म ज्ञान बिना सब सूना ५
—सम्पादकीय सम्बोधन

४. हिन्दू की विशेषता १०
—स्वामी विवेकानन्द

५. नवरात्र ११
—विद्या निवास मिश्र

६. राम राज्य-मानस का १३
—स्वामी आत्मानन्द

७. प्रभु मिलन की राह दिखाए १५
गुरु ग्रंथ साहिब
—इरविन खन्ना

८. फूलों की घाटी तथा १६
हेमकुण्ड सरोवर की यात्रा
—डॉ० निवेदिता बक्शी

९. बोध कथा दया धर्म का मल है २३

१२. समाचार एवं सूचनाएँ २४

रे मन, भजन किया कर !

–डॉ० केदारनाथ लाभ

श्रीरामकृष्ण का तू रे मन, भजन किया कर !
उनके चरण-कमल को शत-शत नमन किया कर !!

संसार एक सपना
कोई यहाँ न अपना
त्रय-ताप-कुंड में गिर
है व्यर्थ और तपना
आकुल-विकल-हृदय से, अनुराग से, विनय से
उन पर सदैव अर्पण, श्रद्धा-सुमन किया कर !

वे पाप-ताप-हारी
जग हेतु देह-धारी
मद, मोह, काम-कांचन-
हित खड्ग वे दुधारी
अपना उन्हें बनाकर, चित्-पद्म पर बिठाकर
हो ध्यान में समाहित, उनकी शरण लिया कर !

ले जोड़ एक नाता
स्वामी पिता कि माता
सुख-दुःख उन्हें सुना तू
वे बन्धु मित्र त्राता
अपना अहं गलाकर, आसक्ति सब मिटाकर
उनकी अपार करुणा में आमरण जिया कर !

जप योग ध्यान तेरे
वे ज्ञान गान तेरे
हैं एकमात्र वे ही
भगवान प्राण तेरे
निष्काम भावना से, अन्तर-उपासना से
उनकी कृपा-सुधा तू, पल-पल मगन पिया कर !
श्रीरामकृष्ण का तू रे मन, भजन किया कर !!

आतम ज्ञान बिना सब सूना

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

यह दृश्यमान जगत बाहर से जैसा हमें दिखाई पड़ता है, वैसा है नहीं; और जैसा है, वैसा दिखाई नहीं पड़ता। यह जगत नित्य, शाश्वत और स्थायी दिखाई पड़ता है, और है अनित्य, नश्वर और क्षणभंगुर। यह जगत सुखमय, रंगीन और मोहक दिखाई पड़ता है, और है अनन्त-अशेष दुःखों से भरा, ईर्ष्या-द्वेष, ममता, स्वार्थपरता, हत्या, लूट, बलात्कार और कृतघ्नता में आकंठ डूबा, भयानकता और पापाचार में लिप्त। किलकते-फुदकते बच्चे, इठलाते युवक, मचलती युवतियाँ, प्यार के मीठे नग्मे और तराने, लाउड-स्पीकरों पर थिरकतीं फिल्मी धुनें, रंगीन बल्बों से छनकर निकलती मादक रोशनी की बाँहों में लिपटे-सिमटे शहर और आल्हा, विरहा, कजरी, बारहमासे, झूमर, सोहर और फाग की स्वर-लहरियों में डूबते-उतराते गाँव और बस्तियाँ ! ओह ! ये सब कितने मधुर-मादक और उन्मादक लगते हैं ! लेकिन इन सबके भीतर एक आह, कराह, करुणक्रन्दन और आर्तनाद की बहती अन्तर्धारा होती है, जिस पर हठात् हमारा ध्यान नहीं जाता। यहाँ तो–

शून्य होने को भरते मेघ
उदित होता छिपने को चाँद
यहाँ खिलते झरने को फूल
दीप जलता होने को मंद
यहाँ किसका अनन्त यौवन !

महाकाल अपनी भयंकर विनाश-लीला का तांडव प्रतिक्षण कर रहा है। संहार के विराट् सागर में सबको लीलने के लिए मानो वह पल-पल ज्वार पर ज्वार उठा रहा है। साधु और पापी, राजा और प्रजा, सुन्दर और असुन्दर, मंत्री और अधिकारी सभी महाकाल के मुख में, दीपक पर पतंगों की तरह, प्रवेश करने के लिए क्यू में खड़े हैं। यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं, कुछ भी स्थायी नहीं। हमारा ज्ञान, विज्ञान, नृत्य-संगीत, बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ और चमचमाती गाड़ियाँ, वातानुकूलित महल-दुमहले और सारे जीव-जन्तु उसी महानाश–मृत्यु–की ओर तीव्रता से बढ़ रहे हैं।

रवि बाबू की एक बड़ी अच्छी कविता है, इस संदर्भ में–

की गम्भीर दुःखे मग्न समस्त आकाश
समस्त पृथिवी। चलितेछि यतदूर
शुनिते एकमात्र मर्मान्तिक सुर
'येते आमि दिब ना तोमाय।' धरनीर
प्रान्त हते नीलाभ्रेर सर्वप्रान्त तीर
ध्वनिते छे चिरकाल अनादयन्त रवे
'येते नाहि दिब येते नाहि दिब' सबे
कहे 'येते नाहि दिब'। तृण क्षुद्र अति
तारे ओ बाँधिया वक्षे माता वसुमति
कहिछेन प्राणपने 'येते नाहि दिब'।
आयुक्षीण दीप मुखे शिखा निब-निब
आँधारेर ग्रास हते के टानिछे तारे
कहिते छे शतबार 'येते दिब ना रे'

हाय ! किस गंभीर दुःख में मग्न है यह सारा आकाश और यह सारी पृथ्वी ! जितनी दूर तक जाता हूँ, एक मात्र यही प्राणलेवा सुर, यही मर्मभेदी आवाज सुनाई पड़ती है–'मैं तुम्हें नही जाने दूँगी।' धरती के इस छोर से लेकर नीले बादलों के उस छोर तक एक ही सनातन स्वर गूँज रहा है–'नहीं जाने दूँगी।' सब की यही वाणी है, 'नहीं जाने दूँगी'। वह दीप शिखा आयुक्षीण होकर अब बुझी तब बुझी की हालत तक पहुँच गयी है। वह अंधकार का ग्रास होना ही चाहती है। तब भी न जाने कौन सारी ताकत लगा कर कह रही है–'नहीं रे, नहीं जाने दूँगी रे।'

ये अनन्त चराचर स्वर्ग मर्त्य छेये
सब चेये पुरातन कथा सब चेये
गम्भीर क्रन्दन 'येते नाहि दिब' हाय !
तब येते दिते हाय, तबू चले याय।
चलिते छे एमनि अनादि काल हते
प्रलय समुद्रवाही सृजनेर स्रोते
प्रसारित व्यग्रबाहु ज्वलन्त आँखिते
'दिब न दिब ना येते' डाकिते-डाकिते
हु-हु करे तीव्र वेगे चले याय सबे
पूर्ण करि विश्वतट आर्त्त कलरवे
सम्मुख उर्म्मिरे डाके पश्चातेर ढेउ
'दिब ना दिब ना येते' नाहि सुने केउ
नाहि कोनो साड़ा।

इस अनन्त चराचर जगत में, स्वर्ग से लेकर मर्त्य लोक तक सबसे पुरानी बात, सबसे गम्भीर क्रन्दन यही है–'नहीं जाने दूँगी, नहीं जाने दूँगी।' फिर भी हाय जाने देना ही पड़ता है। जाने वाला इस रोकथाम के करुण स्वर के बावजूद चला ही जाता है। ऐसा ही अनादि काल से होता चला आ रहा है। सृजन के इस प्रलय समुद्रवाही स्रोत में, विकलता से बाँहे फैलाये हुए, जलती आँखों से-'नहीं जाने दूँगी, नहीं जाने दूँगी'

कहते-कहते, इस संसार के तट को आर्तनाद से पूर्णकर सभी हू-हू करके तीव्र वेग से चले जाते हैं । आगे के जल के वेग को पीछे की लहर चींखचींख कर कहती है– 'नहीं जाने दूँगी, नहीं जाने दूँगी ।' किन्तु कोई नहीं सुनता, कोई उत्तर नहीं देता । बस सब चलते ही चले जाते हैं।

यही है संसार । हम लाख चेष्टा करके भी इस मृत्युतरंग को रोक नहीं सकते-एक पल, एक क्षण के लिए भी नहीं रोक सकते । लेकिन फिर भी हम दीवाने हैं इसकी झूठी शोभा के; हम मुग्ध हैं, बेसुध हैं, विस्मृत हैं इस संसार की कृत्रिम क्षणिक, दाहक और सर्वग्रासी सुन्दरता पर।

आप कहेंगे, जीवन और जगत् का यह आतंक़वादी चित्र है । भयावह तस्वीर है यह उस संसार की जिसकी गोद में हम अपनी पूरी जीवन-यात्रा करते हैं–उल्लास और उमंग के साथ । और फिर अगर यह संसार इतना ही भयावह है, क्षणिक है, कुरूप और वीभत्स है तो फिर क्यों न हम जब तक जीवित हैं, तब तक, जहाँ तक संभव हो इसी संसार का रस लेकर-पूर्णता में इस रस का उपभोग कर, यहाँ से चले जाये ।

एक हद तक यह विचार सही भी लगता है । लेकिन जीवन और जगत को देखने की यह दृष्टि एक खतरा भी पैदा करती है । वह यह कि हम मिथ्या और असत् वस्तु को सही मानकर जब आचरण करने लगते हैं तब पूरे भ्रम का एक जाल ही हम सिरज लेते हैं और हमारा हर आचरण ही गलत होने लगता है । अँधरे में रस्सी को सांप मानकर हम कितना कूदते-फांदते हैं ! कितना तड़पते-छटपटाते हैं ! जब रोशनी आने पर हम देखते हैं कि जिसके भय से हम आक्रांत थे वह सांप नहीं, रस्सी है, तब हमें अपने किये पर कितना पछतावा होता है ! और तब हम कितनी शांति और आश्वस्ति में आ जाते हैं ! इसी तरह क्या हमारी सारी जिन्दगी कूदने-फाँदने, दौड़ने-धूपने की एक थकान भरी गाथा बन कर नहीं रह गयी है ?

संसार और शरीर को जब तक हम सत्य मानते है तब तक हम छटपटाहटों, विकलताओं और पीड़ाओं के मरु-प्रदेश में ही भटकते रहते हैं । अनुकूलता में प्रसन्न और प्रतिकूलता में पीड़ित होते रहते हैं । संयोग में सुख और वियोग में दुःख का अनुभव करते हैं । जन्म में प्रफुल्लता और मृत्यु में महाशोक के सागर में बहने लगते हैं ।

संसार और शरीर को सत्य मानने पर हममें आसक्ति उत्पन्न होती है । आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है । कामना से क्रोध का आविर्भाव होता है । क्रोध मोह को उत्पन्न करता है । मोह से स्मृति जाती रहती है । स्मृति भ्रंश होनें से बुद्धि नष्ट होती है । और बुद्धि-नाश से विनाश होता है । यह गीता की उक्ति है ।

संसार और शरीर दोनों जड़ हैं । इनसे जुड़कर हम जड़ता से ही अपने को बाँधते हैं । जड़ता से बंधना आसक्ति के कारण ही होता है । और आसक्ति ही हमें संसार-चक्र में बार-बार उत्पन्न होने को विवश करती है । आसक्ति से छूटना ही मुक्ति का अर्थात् आनन्द का, चिरंतन आनन्द का रहस्य है ।

आसक्ति से मुक्त होने के लिए अज्ञान के केंचुल को उतारकर, ज्ञान के अपने सत्य स्वरूप में प्रतिष्ठत होने के लिए, दृढ़ संकल्प के साथ सत्य के संधान में लग जाना पड़ेगा । यही हमारा धर्म है ।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक व्याख्यान में कहा था.....हमारे सांसारिक लोग कहते हैं, "धर्म, दर्शन ये सब व्यर्थ की वस्तुएँ लेकर दिमाग खराब मत करो । दुनियाँ में रहो, माना यह दुनिया बड़ी खराब है, पर जितना हो सके इसका मजा ले लो ।' सीधे-सादे शब्दों में इसका अर्थ यही है कि दिन-रात पाखण्डपूर्ण जीवन व्यतीत करो-अपने घाव को जब तक हो सके, ढके रखो । एक के बाद दूसरी जोड़-गाँठ करते जाओ, यहाँ तक कि सब कुछ नष्ट हो जाय और तुम केवल जोड़-गाँठ का एक समूह मात्र रह जाओ । इसी को कहते हैं सांसारिक जीवन । जो इस जोड़-गाँठ से संतुष्ट हैं वे कभी भी धर्मलाभ नहीं कर सकते । जब जीवन की वर्तमान अवस्था में भयानक आशान्ति उत्पन्न हो जाती है, जब अपने जीवन के प्रति भी ममता नहीं रह जाती, जब इस जोड़-गाँठ पर अपार घृणा उत्पन्न हो जाती हैं, जब मिथ्या और पाखण्ड के प्रति प्रबल वितृष्णा उत्पन्न हो जाती है, तभी धर्म का प्रारम्भ होता है । भगवान बुद्ध ने बोधिवृक्ष के नीचे दृढ़ स्वर से जो बात कही थी, उसे जो अपने रोम-रोम से बोल सकता है, वही वास्तविक धार्मिक होने योग्य है । संसारी होने की इच्छा उनके भी हृदय में एक बार हुई थी । इधर वे स्पष्ट रूप से देख रहे थे कि उनकी यह अवस्था, यह सांसारिक जीवन एक-दम भूल है, पर इसके बाहर जाने का उन्हें कोई मार्ग नहीं मिल रहा था । प्रलोभन एकबार उनके निकट आया और कहने लगा-छोड़ो भी सत्य की खोज, चलो, संसार में लौट चलो, और पहले जैसा पाखण्डपूर्ण जीवन बिताओ, सब वस्तुओं को उनके गलत नामों से पुकारो, अपने निकट और सब के निकट दिन-रात मिथ्या बोलते रहो । यह प्रलोभन उनके पास पुनः आया था, पर उस महावीर ने अपने अतुल पराक्रम से उसे उसी क्षण परास्त कर दिया । उन्होंने कहा, 'अज्ञानपूर्वक केवल-खा-पीकर जीने की अपेक्षा मरना ही अच्छा है, पराजित होकर जीने की अपेक्षा युद्ध-क्षेत्र में मरना श्रेयस्कर है ।' यही धर्म की भित्ति है। जब मनुष्य इस भित्ति पर खड़ा होता है तब समझना

चाहिए कि वह सत्य की प्राप्ति के पथ पर, ईश्वर की प्राप्ति के पथ पर चल रहा है । धार्मिक होने के लिए भी पहले यह दृढ़ प्रतिज्ञा आवश्यक है । मैं अपना रास्ता स्वयं ढूंढ़ लूँगा । सत्य को मानूँगा अथवा इस प्रयत्न में प्राण दे दूँगा । कारण, संसार की ओर से तो और कुछ पाने की आशा है ही नहीं, यह तो शून्य स्वरूप है । दिन-रात उड़ता जा रहा है । आज का सुन्दर, आशापूर्ण तरुण कल का बूढ़ा है । आशा, आनन्द, सुख-ये सब मुकुलों की भाँति कल के शिशिरपात-से नष्ट हो जायँगे । यह हुई इस ओर की बात, और दूसरी ओर है विजय का प्रलोभन-जीवन के समस्त अशुभों पर भी विजय-प्राप्ति की संभावना और तो और, स्वयं जीवन और जगत पर भी विजय-प्राप्ति की संभावना है । इसी उपाय से मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है । अतएव जो लोग इस विजय-प्राप्ति के लिए, सत्य के लिए, चेष्टा कर रहे हैं, वे ही सत्य-पथ पर हैं, और सारे वेद भी यही प्रचार करते हैं, 'निराश मत होओ; मार्ग बड़ा कठिन है–छुरे की धार पर चलने के समान दुर्गम; फिर भी निराश मत होओ; उठो, जागो और अपने परम आदर्श को प्राप्त करो ।''[१]

अपने परम आदर्श को प्राप्त करने के लिए छुरे की धार पर चलने के समान दुर्गम पथ पर चलना होगा । क्या है हमारा परम आदर्श ? संसार के रूप को, उसके वास्तविक रूप को जानकर, उसके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करना । जब तक हम संसार को उसके मूल रूप में नहीं जान लेते तबतक हम उसे गलत नाम-रूपों में जानते रहेंगे और दुःख-भोग करते रहेंगे । हम जानते हैं कि नाम और रूप मिथ्या होते हैं । जो कुछ भी परिवर्त्तनशील हैं वह असत् है, मिथ्या है । और चूँकि नाम और रूप परिवर्त्तनशील हैं अतः वे मिथ्या हैं । तो सत्य क्या है ?

सत्य है एकमात्र परमात्मा-एकमेवाद्वितीयम् । इस परमात्मा को जानना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए । उस एक को जान लेने से ही सब कुछ जान लिया जाता है । उसको नहीं जानने से कुछ नहीं जाना जाता है । और इसी से हम भाग-दौड़ की जिन्दगी जीते हुए अंत में थक कर, हार कर, हाँफते हुए अपने प्राण विसर्जन कर देते हैं।

कहाँ है वह परमात्मा ? वह हमी में है । वह हमी हैं । उपनिषदें डंके की चोट पर इस तथ्य की घोषणा करती है ।

एको देवः सर्व भूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः,
साक्षी चेता केवलोनिर्गुणश्च ।।[२]

अर्थात् वही एक देव ही सभी प्राणियों में छिपा हुआ सर्वव्यापी और सब प्राणियों का अन्तरात्मा, परमात्मा है । वही सबके कर्म का अधिष्ठाता, समस्त जीवों का निवास स्थान, सब का साक्षी चेतनस्वरूप, सर्वथा विशुद्ध और गुणातीत है ।

चूँकि वह परमात्मा सब देश में है, सर्वत्र है, अतः यहाँ भी है । वह सभी कालों में है, अतएव इस समय भी है, वह सभी जीवों में है, इसलिए हम में भी है। आत्म तत्त्व की उपलब्धि करने वालों को इस तथ्य पर निरन्तर विचार करते रहना चाहिए । हमें इस बात में दृढ़ आस्था होनी चाहिए कि परमात्मतत्त्व ही वास्तविक तत्त्व है । इसके अतिरिक्त कुछ भी तत्त्वपूर्ण नहीं है । तत्त्व वह है जो चिरन्तन है, सर्वत्र है और सदैव है । इस तत्त्व को जान लेने पर जीवन और जगत के सम्बन्ध में हमारे सारे संशय दूर हो जाते हैं ।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तसिमन्दृष्टे परावरे ।।[३]

अर्थात् कार्य और कारण स्वरूप उन परात्पर परब्रह्म को तत्त्व से जान लेने पर इस जीव के हृदय की अविद्यारूपी गाँठ खुल जाती है जिसके कारण उसने इस जड़ शरीर को ही अपना स्वरूप मान रखा है । इतना ही नहीं उसके समस्त संशय सर्वथा मिट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं । यानी यह जीव सारे बन्धनों से मुक्त होकर परमानन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो जाता है ।

जब तक हम अपने आत्मस्वरूप को नहीं जान लेते तभी तक यह जड़ और मरणधर्मा जगत हमें मोहक, मादक और उन्मादक लगता है ।

जब तक हम अपने आत्मस्वरूप को नहीं जान लेते तभी तक ईश्वर असत्य काल्पनिक और बकवास लगते हैं तथा संसार और शरीर ही सत्य और अपने प्रतीत होते हैं।

संसार और शरीर का सत्य एवं आत्मीय लगना ही माया और महाकाला के सर्वग्रासी मुख में प्रविष्ट होने के लिए स्वयं को झोंकना है ।

आत्मस्वरूप का बोध हो जाने पर 'मैं' और 'मेरा' का भाव मर जाता है, अपने परायेपन का द्वैत-भाव झड़ जाता है और हमारी चेतना में खिल उठता है अद्वैत का-भूमा का शाश्वत शतदल ।

जहाँ हम कुछ अन्य नहीं देखते, कुछ अन्य नहीं सुनते तथा कुछ अन्य नहीं जानते, वह भूमा है ।

जहाँ हम कुछ और देखते हैं, कुछ और सुनते हैं एवं कुछ और जानते हैं, वह अल्प है ।[४]

१. स्वामी विवेकानन्द : ज्ञान योग : श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर : पृ०-१३०.३२
२. श्वेताश्वतरोपनिषद् ६/११, ३. मुण्डकोपनिषद् २/२/८, ४. छान्दोग्य उपनिषद् ६/२७

जो भूमा है, वही अमृत है और जो अल्प है, वह मर्त्य है । सुख-सच्चा सुख, एक अविनाशी आनन्द, एक अमृत आनन्द-भूमा में है, अद्वैत में है, आत्म ज्ञान में है, अल्पता में नहीं, द्वैत में नहीं, संसार और शरीर में नहीं । यह भूमा ही सर्वत्र है, सब कुछ है और आत्मा है। इसी भूमा को, आत्मा को जान लेने पर, प्राप्त कर लेने पर कुछ और जानना शेष नहीं रह जाता ।

आत्मा को पहचान कर परमात्मा को ही हम पहचानते हैं । आत्मा को उपलब्ध कर परमात्मा को ही हम उपलब्ध करते हैं । आत्म ज्ञान से ही परमात्म-ज्ञान भी होता है । श्रीरामकृष्ण कहते थे–'मनुष्य स्वयं को पहचानने से भगवान् को पहचान सकता है । 'मैं' कौन है ? हाथ, पैर, रक्त, माँस इनमें से 'मैं' कौन है ? इस तरह भलीभांति विचार करने पर दिखाई देता है कि 'मैं' नाम की कोई वस्तु है ही नहीं । जिस प्रकार प्याज का छिलका अलग करते जाओ तो छिलका ही छिलका निकलता जाता है, सार भाग कुछ मिलता ही नहीं उसी प्रकार विचार करने पर 'मैं' पन नाम से कुछ भी नहीं मिलता । अन्त में जो बचता है वही आत्मा या चैतन्य है । 'मैं' 'मेरा' के दूर हो जाने पर भगवान् दर्शन देते हैं।''[१]

इस आत्मा को ढूँढना नहीं, केवल पहचान लेना है । खोजना नहीं, केवल जान लेना है । ढूँढते और खोजते हैं हम उसे जो हमसे अलग है, भिन्न है, दूर है । जो हम में है, जो हमसे अभिन्न है, और जो हम स्वयं ही हैं वस्तुत, उसे खोजना कहाँ है ? उसे खोजनें के लिए भटकना अज्ञान है और उसे जान लेना ज्ञान है । मगर उसे हम जल्दी जान पाते नहीं । हमारी दशा उस प्रेमिका की तरह है जो रोती हुई कहती है :–

मैं और मेरा यार दोनों इक बस्ती में बसते हैं,
मगर किस्मत की खूबी है कि दर्शन को तरसते हैं ।

अजब हैरानी है ! एक गाँव में रहकर भी मुलाकात को तड़प रही है महबूबा । छटपटाती खोजती फिर रही है प्रेमिका ! कहाँ है मेरा यार ! कहाँ है मेरा प्रियतम ! कहाँ है मेरा दिलवर, मेरा देवता; मेरा प्रभु ! उस प्रेमिका से कहना होगा-बन्द करो भटकना, बन्द करो दर-दर की ठोकरें खाना, बन्द करो यहाँ-वहाँ तलाशने की कोशिश, तुम सीख लो ठहरना अपने गाँव में । बैठी रहो अपने गाँव में ! तुम्हारे ही गाँव में, नहीं, तुम्हारे ही घर में, नहीं-नहीं तुम्हीं में तुम्हारा महबूब बैठा हुआ है और तू तलाश रही है बाहर । अपने भीतर झाँक पगली ! अपना घूँघट हटा दीवानी ! तू पायेगी तेरा प्रियतम तुम्हारे बिल्कुल करीब था, सदा से था हमेशा था और तू नाहक परेशान हो रही थी ।

एक आदमी आधी रात को उठा और तमाकू पीने की इच्छा से टिकिया सुलगाने के लिए पड़ोसी के घर जाकर दरवाजा खटखटाने लगा । घर में सभी लोग सो गये थे । काफी देर बाद एक व्यक्ति ने दरवाजा खोला और पूछा, 'क्यों जी क्या बात है ?' इस आदमी ने कहा, 'तमाकू पीना है, टिकिया सुलगाने के लिए थोड़ी अंगार चाहिए थी' तब पड़ोसी ने कहा, 'तुम भी बड़े अजीब हो ! अंगार के लिए आधी रात को इतनी तकलीफ उठाकर तुम यहाँ आये, इतना दरवाजा खटखटाया, पर तुम्हारे तो हाथ ही में लालटेन जल रही है ।' मनुष्य जो पाना चाहता है वह उसके पास ही है, फिर भी वह उसके लिए नाना जगह भटकता फिरता है ।[२]

सचमुच, हमें भटकना नहीं, ठहर जाना है । दौड़ना नहीं, रुक जाना है । छटपटाना नहीं, शान्त हो जाना है। बाहर नहीं, अपने भीतर झाँकना है । धारा नहीं राधा हो जाना है ।

कबीर ने गाया है–बड़ी मस्ती में अनुभूति का एक गीत गाया है–

पानी बिच मीन पियासी ।
मोहि सुनि-सुनि आवत हाँसी ॥
आतम ज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या काशी ।
घर में वस्तु धरी नहिं सूझै, बाहर खोजन जासी ॥
मृग की नाभि माहिं कस्तूरी, वन-वन फिरत उदासी ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सहज मिले अविनासी ॥

हाँ, मछली पानी में ही है, मगर प्यासी है । एक अजीब, अचम्भे की, हँसी, हैरानी और परेशानी की बात है यह । मगर है बात सही । आतम ज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या काशी ! अगर आत्म ज्ञान नहीं हुआ तो सारा जीवन व्यर्थ है संसार में जन्म लेना, संसार में रहना और संसार का बने रहना-सब व्यर्थ है। आत्मज्ञान नहीं हो तो काशी उजाड़ और गंगा अंगार ही लगेगी । मथुरा और काशी जाने से, चारों धाम और चौबीसों तीर्थ का पर्यटन करने से कुछ नहीं होने को ।

यह 'आतम ज्ञान' क्या है ? ज्ञान के द्वारा, सत् असत् के विवेक के द्वारा असत् को त्याग और सत् को ग्रहण कर अपने मूल स्वरूप में स्थित हो जाना । 'आतम ज्ञान' का साधक 'नेति-नेति' का विचार करते हुए मिथ्या वस्तुओं को छोड़ता जाता है और जहाँ विचार समाप्त हो जाता है, जहाँ जानना कुछ शेष नहीं रह जाता वहाँ आत्मा का आलोक-सौ-सौ सूर्यों के आलोक की तरह-उसके भीतर जगमगा उठता है । वह समाधि

१. अमृतवाणी : रामकृष्ण मठ, नागपुर वाणी ७३६

२. अमृतवाणी : श्रीरामकृष्णदेव : रामकृष्ण मठ, नागपुर पृ० १९०-९१

-मग्न हो जाता है । उसे आत्मज्ञान यानी ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाता है । श्रीरामकृष्ण कहते थे-'चोर घर में घुसकर अंधेरे में वस्तुओं को टटोलता है । मेज पर हाथ रखा, 'यह नहीं' कहकर छोड़ दिया । फिर शायद कुर्सी पर हाथ रखा, उसे भी 'यह नहीं' कहकहर छोड़ दिया । इस तरह 'यह नहीं' 'यह नहीं' ('नेति'-'नेति') करते हुए, एक के बाद एक वस्तुओं की छानबीन करते-करते अन्त में उसका हाथ तिजोरीवाली पेटी पर जाता है । तब वह 'यह है !' (इति) कह उठता है, और वहीं उसकी खोज समाप्त हो जाती है । ब्रह्म का अनुसन्धान भी इसी प्रकार है ।'

और इस प्रकार नेति-नेति के द्वारा हम जिस 'इति' पर पहुँचते हैं वही हमारा आत्मस्वरूप है, वही 'आतम ज्ञान' है । इस आत्म-ज्ञान के होते ही हम समझ जाते हैं कि–

द्वैतमूलमहो दुःखं नान्यत्तस्यास्ति भेषजम् ।
दृश्यमेतन्मृषा सर्वं एकोऽहं चिद्रसोऽमलः ॥१

आह ! द्वैत-भाव ही सारे दुःखों का मूल है, कारण है । इन दुःखों से मुक्त होने की कोई अन्य औषधि नहीं, सिवा इस अनुभूति के कि दृश्यमान सारा जगत् मिथ्या है और मैं शुद्ध एक परम चैतन्य तथा आनन्द के अमल रस से परिपूर्ण हूँ ।

और आनन्द के अमल रस से परिपूर्ण होकर हम यह घोषणा आह्लादपूर्वक कर उठते हैं–

न मे बन्धोऽस्ति मोक्षो वा भ्रान्तिः शान्ता निराश्रया ।
अहो मयि स्थितं विश्वं वस्तुतो न मयि स्थितम् ॥२

कि मेरा न कोई बन्धन है, न कोई मोक्ष (क्योंकि आत्मा सदैव मुक्त है) आश्रय और आधार के समाप्त हो जाने के कारण मेरी भ्रान्ति शान्त हो गयी है, समाप्त हो गयी है । (हमलोग अपने को बद्ध जीव समझते हैं इसी से मुक्ति की खोज करते हैं । यह मात्र भ्रम है जिसका कारण अपने शुद्ध स्वरूप का अज्ञान है । जब हम अपने आत्म के शुद्ध स्वरूप पर निरन्तर विचार करते है तब यह अज्ञान नष्ट हो जाता है । भ्रान्ति अज्ञान का आधार या आश्रय खो देती है और मिट जाती है । अहा, यह संसार यद्यपि मुझ में स्थित है तथापि वास्तविक रूप से इसकी कोई सत्ता नहीं है ।

और तब हम अपने शुद्ध स्वरूप को जानकर कह उठते हैं–

न मृत्युर्न शंका न मे जाति भेदः पिता नैव में नैव माता न जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।
न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुखम् न मन्त्रं न तीर्थं न वेदा न यज्ञा।
अहं भोजनं नैव भौज्यं न भोक्ता चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।

जब हम अपने इस स्वरूप को जान लेते हैं, जब हम इस तथ्य का और तत्व का उद्घाटन कर लेते हैं कि मैं चिदानन्द रूप हूँ, मैं शिव हूँ, तब यह संसार रहते हुए भी हमारे लिए नहीं रहता । तब यह शरीर रहते हुए भी हमारे लिए नहीं रहता । अर्थात् तब संसार की भयावहता, कुरूपता, मरणधर्मिता हमारे लिए विनष्ट हो जाती है । सारा जगत् ही हमें आनन्दमय, उल्लासमय, संगीत और नृत्यमय दिखाई पड़ने लगता है । एक शिव-संगीत से गूंजित, एक पार्वती-नृत्य से पूरित, एक महारास से रसाप्लावित हो उठता है यह संसार । यहाँ न मृत्यु रह जाती है, न जन्म रह जाता है, न पुण्य और न पाप, न सुख और न दुःख ! किसकी मृत्यु होगी यहाँ ! कौन दुःखी होगा यहाँ ! किसका पुण्य और किसका पाप ! किसका शोक और किसका ताप ! आत्मा तो निर्विकार है, शाश्वत है, अनन्त है ।

इस आत्मज्ञान के बिना संसार में जो कुछ है वह व्यर्थ हैं, निःसार है, शून्य है, दुःखद है ।

इस आत्मज्ञान से संसार हमारी ही चेतना का चिन्मय प्रसार है और शरीर ब्रह्मपुर है और सब कुछ ब्रह्ममय है अतः आनन्दमय है । इस आत्मज्ञान से सबकी आँखों में हमारा ही आलोक, सबके अधरों पर हमारी ही मुस्कान, सबके कंठों से हमारा ही मधुगान और सबकी धमनियों में हमारी ही धड़कन तरलायित होती दीखती है ।

इस आत्मज्ञान से ही पत्तियों की मर्मराहट में एक अनहद संगीत, वायु की सनसनाहट में ब्रह्मवेणु की एक मीठी तान, और पक्षियों के कलरव में एक अनादि डमरू का डिम-डिम नाद सुनाई पड़ता है ।

सचमुच, आत्मज्ञान के बिना न हम अपने को न संसार को जान पाते हैं, न अपने जीवन का और न जगत का ही अमल मधुरस पान कर पाते हैं । इसी से किसी ने कहा है–

विद्या बल धन रूप यश कुल सुत बनिता मान ।
सभी सुलभ संसार में दुर्लभ आतम ज्ञान ॥

लेकिन यह 'आत्म ज्ञान' कितना भी दुर्लभ क्यों न हो, हमें उसे प्राप्त करने का शुद्ध संकल्प लेना ही होगा, दृढ़-व्रत धारण करना ही होगा । भगवान् श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्दजी महाराज से मेरी अनन्य प्रार्थना है कि वे इस आत्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए हमें उत्प्रेरित करें और इस आत्म-ज्ञान में हमें प्रतिष्ठित कराने की अहेतुकी कृपा करें । जय श्रीरामकृष्ण ! जय श्री माँ ! जय स्वामीजी महाराज !! ❑

१. अष्टावक्र सहिता : २/१६

२. वही २/१८

हिन्दू की विशेषता

–स्वामी विवेकानन्द

भारत में हिन्दुओं ने कभी धार्मिक उत्पीड़न नहीं किया बल्कि उन्होंने विश्व के सभी धर्मों के प्रति अद्‌भुत आदर-भाव रखा। जब हिब्रू जाति के कुछ लोग स्वदेश से भगाये गये थे तब हिन्दुओं ने उन्हें शरण दी, केरल में वे यहूदी अब भी है। कभी उन्होंने नष्टप्राय ईरानियों के अवशिष्ट अंश का स्वागत किया और वे लोग आज भी मुम्बई के आधुनिक पारसियों के रूप में हमारे अंग होकर विद्यमान हैं। ईसा मसीह के शिष्य सेन्ट थॉमस के साथ आने का दावा करनेवाले ईसाई लोगों को भी भारत में रहने तथा अपनी विचारधारा सुरक्षित रखने की अनुमति दी गयी। उनकी एक बस्ती अब भी भारत में है। यह सहिष्णुता का भाव यहाँ न मरा है न मरेगा और न मर सकता है।

सम्भव है तुम द्वैतवादी हो और मैं अद्वैतवादी। सम्भव है कि तुम अपने को भगवान का नित्य दास समझते हो और दूसरा यह कहे कि मुझमें और भगवान में कोई अन्तर नहीं है–दोनों ही हिन्दू और सच्चे हिन्दू हैं। यह कैसे सम्भव है ? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए उसी महावाक्य का स्मरण करो–**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**।

वेद में पूछा गया है–**कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वम् इदं विज्ञातं भवति**–ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसका ज्ञान होने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है ? इस प्रकार, हमारे जितने शास्त्र हैं जितने दर्शन हैं, सबके सब उसी के निर्णय में लगे हुए है जिनके जानने से सब कुछ जाना जा सकता है।

हिन्दू लोग साहसी थे और उन्हें इस बात का श्रेय देना होगा कि वे अपने सभी विचारों को बड़े साहस के साथ सोचते थे, इतने साहस के साथ कि उनके विचार की एक चिनगारी मात्र से पश्चिम के तथाकथित साहसी दार्शनिक डर जाते हैं। इन आर्य मनीषियों के बारे में प्रोफेसर मैक्समूलर ने ठीक ही कहा है कि वे लोग इतनी अधिक ऊँचाई तक बढ़े, जहाँ केवल उनके ही फेफड़े साँस ले सकते थे, दूसरों के फेफड़े तो फट गये होते ! जहाँ भी बुद्धि ले गयी, इन धीर पुरुषों ने उसका अनुरागपूर्वक अनुसरण किया, उसके लिए कोई त्याग उठा न रखा। सम्भव था कि इससे उनके हृदय के चिरपोषित अन्धविश्वास चूर-चूर हो जाते, पर उन्होंने इनकी चिन्ता न की। इसकी भी परवाह न की कि समाज उनके बारे में क्या सोचेगा, क्या कहेगा। वे तो साहसी थे। उन्होंने जिन्हें ठीक और सच समझा, उसी की चर्चा की और प्रचार किया।

प्राचीन हिन्दू लोग अद्‌भुत विद्वान् थे–मानो सजीव विश्कोष ! वे कहते थे–विद्या यदि किताबों में ही रहे और धन यदि दूसरों के हाथ में रहे, तो कार्यकाल उपस्थित होने पर वह विद्या भी विद्या नहीं है और वह धन भी धन नहीं है।'

पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम्।
कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम्॥

हिन्दू धर्म, में एक राष्ट्रीय भाव देखने को मिलेगा-वह है आध्यात्मिकता। दुनिया के किसी अन्य धर्म में, किसी अन्य धर्मग्रन्थ में ईश्वर की परिभाषा करने में इतनी शक्ति लगायी गयी हो, ऐसा देखने में नहीं आता। उन्होंने इस प्रकार आत्मा का आदर्श निर्दिष्ट करने की चेष्टा की है कि कोई पार्थिव भाव इन्हें कलुषित नहीं कर सकता। आत्मा दिव्य है और उसमें कभी मानवीय भाव आरोपित नहीं किया जा सकता।

आर्य लोग सदैव अपनी आत्मा में ही ब्रह्म को खोजते रहे हैं। बाद में वह उन लोगों की स्वाभाविक विशेषता बन गयी। और यह विशेषता उनकी कलाओं तथा उनके सामान्यतम आचरण में भी व्यक्त हुई। आज भी जब हम धार्मिक मुद्रा में बैठे किसी व्यक्ति का यूरोपीय चित्र देखते हैं, तो पाते है कि चित्रकार ने उसकी आँखों को ऊर्ध्वोन्मुख दिखाया है, मानो वह प्रकृति से बाहर आकाश की ओर ईश्वर की खोज के लिये देख रहा हो। पर दूसरी ओर भारतवर्ष में धार्मिक प्रवृत्ति को साधक की बन्द आँखों के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है, मानो वह अपने भीतर देख रहा है।

आजकल हम लोग जिस हिन्दू नाम से परिचित हैं, इस समय उसकी कोई सार्थकता नहीं है, क्योंकि उस शब्द का अर्थ केवल यह था–सिन्धु नदी के पार बसनेवाले। प्राचीन फारसियों के गलत उच्चारण से सिन्धु शब्द 'हिन्दू' हो गया। सिन्धु नदी के इस पार के सभी लोगों को वे हिन्दू कहते थे। इस प्रकार हमें हिन्दू शब्द मिला। फिर मुसलमानों के शासनकाल से हमने स्वयं भी वह शब्द अपने लिए स्वीकार कर लिया।

तुम हिन्दू हो, अतः तुम्हारा सहज विश्वास है कि तुम चिर काल तक रहोगे। मेरा विश्वास है कि कोई हिन्दू नास्तिक नहीं हो सकता। सम्भव है कि कोई पाश्चात्य ग्रन्थ पढ़कर अपने को भौतिकवादी मानने लगा हो। पर ऐसा कुछ काल के लिए ही होता है। यह बात तुम्हारे खून में नहीं है। जो बात तुम्हारे रग-रग में है, उसे तुम निकाल नहीं सकते। ❑

नवरात्र

–विद्यानिवास मिश्र

वर्ष में दो नवरात्र पड़ते हैं । शारदीय और वासन्ती। दोनों सम्पातों में पड़ते हैं । सम्पात का अर्थ होता है– स्थूल रूप में रात-दिन का बराबर होना, पृथ्वी का सूर्य से सम दूरी होना । सूक्ष्म रूप से इसका अभिप्राय है- सन्तुलन प्राप्त करने की स्थिति । ताप और शीत के बीच सन्तुलन होता है । शरद में ताप उतरते-उतरते प्रखर हो उठता है और शीत आते समय बड़ा सुखद लगता है । वसन्त में शीत उतरते-उतरते भी सिहरन पैदा करता है और नये ताप का चढ़ना सुखद लगता है । इसलिए इन दोनों ऋतुओं के तनाव में ऊर्जा पैदा होती है । उसकी सही पहचान हो, उसका सही विनियोग हो, इसलिए दोनों के शुक्ल पक्ष की प्रारम्भिक नौ तिथियों में जगदम्बा की पूजा-अर्चना और उनके निमित्त व्रत का विधान है । जगदम्बा की पूजा का विधान इसलिए है कि व्यक्ति अपनी कोई ऊर्जा है, इसका अभिमान छोड़ने का अभ्यास करे, सबकी ऊर्जा का स्रोत एक है, वही आदि-शक्ति है, वही माँ है, वही नाना रूपों में व्यक्त होती है । फिर वही अदृश्य अव्यक्त करुणा और ममता के प्रवाह में समा जाती है । वह व्यक्त दो कारणों से होती है । एक तो तब, जब आसुरी शक्ति का मद प्रबल हो जाता है, दुर्बल बेध्य बन जाता है, तब वह कामी होकर अवतीर्ण होती है । वह शक्ति के मद का मद पीती है, तब वह विकराल होती है । दूसरा कारण है, उसे यों ही लीला करनी होती है, वह छोटी-सी बच्ची बन जाती है, वह बच्चों की मांग पर तरह-तरह के खिलौने बनाने वाली माँ बन जाती है ।

वह भुवनमोहिनी बन जाती है । वस्तुतः प्रकृति में भी सुषमा तभी होती है, जब वह सु अर्थात् अच्छी तरह समता या सन्तुलन प्राप्त करती होती है । यह सन्तुलन पानेवाले या देनेवाले के बीच हो, सोखनेवाले या सींचनेवाले के बीच हो, आवेग और शक्ति के बीच हो, तीव्रता और स्थिरता के बीच हो, सन्तुलन प्राप्त करने की प्रक्रिया ही सौंन्दर्य बनती है । शरत् की, वसन्त की प्रकृति भी इसी प्रकार की प्रकृति है । शरत् में घनघोर वर्षा के बाद आकाश निर्मल होता है, वसन्त में घनघोर शीत के कुहासों के बाद आकाश निर्मल होता है । दोनों ऋतुओं में कमल खिलते हैं । दोनों ऋतुओं में तरह-तरह के पक्षियों के आने-जाने का कलरब गूंजता है । सर्वत्र एक चढ़ाव-उतार, आरोह-अवरोह दिखायी-सुनायी पड़ता है । इसी सुषमा को भुवनमोहिनी की चितवन कहते हैं, खंजन की तरह ऊँची हुई आँखें शरद् की हैं और कमल की तरह धुली हुई आँखें वसन्त की हैं । हम नवरात्र में व्रत इसलिए करते हैं कि अपने भीतर की शक्ति, संयम और नियम से सुरक्षित हो, उसका अनावश्यक अपव्यय न हो । पूरी सृष्टि में जो ऊर्जा का प्रवाह आ रहा है, उसे अपने भीतर रखने के लिए भी पात्र की स्वच्छता आवश्यक है । व्रत के साथ हम ऐसे पुष्पों से, ऐसी सुगन्धियों से, ऐसे आमोद-प्रमोद के मनोरम उपायों से जगदम्बा को रिझाने का प्रयत्न करते हैं, जो इस लोक में सबसे अधिक चटकीले हों, कमनीय हों, हृद्य हों, आस्वाद्य हों, और संभेद्य हो । गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य का अर्पण इसी भाव से होता है कि इस संसार में जो कुछ सुन्दर है, वह सब माँ-तुम्हारा ही है । गन्ध के रूप में पृथ्वी तत्व अर्पित होता है । पुष्प के रूप में पुष्प की तरह खिला हुआ प्रसन्न आकाश अर्पित होता है । धूप के रूप में सर्वशोधक वायु तत्व अर्पित होता है, दीप के रूप में अग्नि तत्व अर्पित होता है और नैवेद्य के रूप में जल का अमृत अर्पित होता है ।

इन पांचों तत्वों की समष्टि ताम्बूल के रूप में अर्पित होती है । यह अर्पण इस भाव से होता है कि सीमित परिधि में रहनेवाला तत्व अनन्त असीम में निहित तत्व को अर्पित हो जाये । इन पांच तत्वों के अर्पण के साथ-साथ गीत-वाद्य भी अर्पित होते हैं, उनके माध्यम से मन अर्पित होता है । विश्वमन को, स्तुतियाँ अर्पित होती हैं, उनके ब्याज से सीमित बुद्धि असीम बुद्धि को अर्पित होती है । जप और ध्यानयोग के द्वारा आत्मा अर्पित होती है । विश्वात्मा को । इस प्रकार शक्ति के आराधन का यह नवरात्र कार्यक्रम उत्सव के रूप में मनाया जाता है । दुःख-सुख दोनों अर्पित होते हैं ऐसी माँ को जो जागती रहती हैं, हर बच्चे की देखरेख के लिए । वह यह देखती रहती है, कि कहीं कोई बच्चा दूसरे बच्चे के साथ अन्याय तो नहीं कर रहा है । सतानेवाले बच्चे को वह दण्ड देती है, चोट खाये हुए बच्चे को सहलाती है । वह सतानेवाले को बड़ी डरावनी लगती है और सताये जानेवाले को बड़ी दयालु। पर है वह एक ही । उसी के अनेक रूप दिखायी पड़ते हैं : के नोपम भवतु तस्य पराक्रमस्य/रूप चं शत्रुं भय-कार्यातिहारि कुत्र/चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्ट/त्वच्चे देवि वरदे भुवनत्रयेपि ।

इन अनेक रूपों में कोई भेद नहीं है । व्यापार में भेद है, तत्वतः कोई भेद नहीं है । दो या बहुत दिखने का द्वैत नहीं होता है । दो का अनुभव करने भर या मान करने से दो या बहुत होता है । हम व्यापार की विविधता देखते हैं, सब व्यापारों का मूल स्रोत नहीं देखते । हर व्यापार के पीछे कोई न कोई मंगल संकेत रहता है ।

यही कारण है कि जगदम्बा सबको अपनी वत्सल छाया में समेटती है, बड़े से बड़े ज्ञानी को बड़े से बड़े विरागी तपस्वी को और अज्ञ से अज्ञ, अबोध से अबोध जन को, अधम से अधम विषयों में फंसे जन को । माँ के आगे सब कुछ भूल जाता है । बस, इतना ही याद रहता है । सन्तान कैसी भी हो, माँ तो बस माँ होती है, एक बार सब दुराव भर छोड़ दे, उनके आगे सब कुछ रख दे, अपनी दुर्बलता, अपनी क्षमता सब उन्हीं को सौंप दे, उन पर छोड़ दे । निश्चय ही माँ मंगल करेगी । वे सर्वमंगल मांगल्या है ।

ऐसी माँ की अर्चना जिस सौष्ठव से जिस भाव से की जानी चाहिए, वह हो नहीं रही है, इसीलिए इतना अमंगल है । देखने में लगता है, बड़ा उत्साह है, बड़ा भावोन्माद है, पर भीतर-भीतर कहीं न कहीं दूसरे से बढ़चढ़कर दिखने का भाव रहता है । जगदम्बा यह सहन नहीं करती । और तब सृष्टि का सन्तुलन बिगड़ता है । नवरात्र का पर्व नैसर्गिक पवित्रता और बालसुभाव के आवाहन का पर्व है । यह आवाहन जितनी सुरुचि से, जितनी सादगी से, जितनी प्रकृति के साथ सन्तुलन बुद्धि रखते हुए किया जाये, जितने बालसुलभ भाव से, सरल निश्चल मन से किया जाय, उतनी ही जगदम्बा प्रसन्न होती है । काश ! हम आज अमंगल के घेरे में घिरे हुए लोग समझते तो हमारा आवाहन कर्णकटु ध्वनियों का हाहाकार न होता । हमारे आयोजन इतने दिखाऊ और खोखले न होते । नवरात्र का संदेश नवसृष्टि का सन्देश है, इसे हम समझ लें तो विश्वमंगल का अध्याय प्रारंभ हो जाय ।

("नवभारत टाइम्स" से साभार)

❑

हमारे कुछ महत्वपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार	७०.००	योगदर्शन एवं योगसाधना	५०.००
श्रीरामकृष्ण	०५.००	मुक्ति के उपाय	१०.००
मनस्तत्व और आत्मानुभूति	३०.००		

स्वामी प्रज्ञानन्द प्रणीत

राग और रूप ३००.००

रामकृष्ण वेदान्त मठ

१९ए एवं बी, राजा राजकृष्ण स्ट्रीट, कोलकाता–७०० ००६

☎ (०३३) ५५५-८२९२, ७३००

E-Mail : ramakrishnavedantamath@vsnl.net

Website : www.ramakrishnavedantamath.org

राम राज्य–मानस का

(विजया दशमी के अवसर पर वार्ता)

–स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर के सचिव थे । उन्होंने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के निमित्त विभिन्न विषयों पर अनेक चिंतनपूर्ण-भावोद्दीपक लघु निबंध लिखे थे जो आकाशवाणी के भिन्न-भिन्न केन्द्रों द्वारा यथासमय प्रसारित किये गये थे । प्रस्तुत वार्ता आकाशवाणी के रायपुर केन्द्र से १६ अक्टूबर १९८३ को विजयादशमी के अवसर पर प्रसारित की गयी थी । यह वार्ता रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद के अध्यक्ष स्वामी त्यागात्मानन्द जी महाराज के सौजन्य से प्राप्त हुई है जिसे विवेक शिखा के पाठकों के लिए प्रकाशित किया जा रहा है–सं०)

गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरित मानस' में 'रामराज्य' का बड़ा सुन्दर चित्र खींधा है और यह बताया है कि वह मात्र एक सैद्धान्तिक कल्पना ही नहीं है, बल्कि वह यथार्थ का सत्य भी हो सकता है, यदि रामराज्य के आधारभूत तत्त्व को जीवन में उतारने की चेष्टा की जाय । गोस्वामीजी 'मानस' में इन तत्त्वों के सूत्र संकेत के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं । हम उन सूत्रों को पकड़ने की चेष्टा करेंगे ।

गोस्वामीजी का प्रथम संकेत यह है कि रामराज्य की स्थापना पहले आयोध्या में नहीं होती, अपितु चित्रकूट में होती है और केवट उसका प्रथम नागरिक होता है। भले ही महाराज दशरथ का संकल्प था कि रामराज्य की स्थापना अयोध्या में हो और उसके लिए उन्होंने श्री राम के युवराज-पद पर अभिषेक की घोषणा भी कर दी थी, पर उनकी योजना पूरी नहीं हो सकी । इसके कारणों पर विचार करने से रामराज्य की बाधाओं का सम्यक् ज्ञान होता है । दशरथ ने यह घोषणा तो कर दी कि कल श्री राम को युवराज-पद पर आसीन किया जायगा, पर क्या उनका आचरण रामराज्य के अनुकूल था ? कहाँ उन्हें इस पुनीत कार्य के निमित्त व्रत और संयम की रात्रि व्यतीत करनी चाहिए थी और कहाँ वे अपनी आसक्ति के केन्द्र कैकेयी के पास जाते हैं । जहाँ पर दशरथ का काम हो, कैकेयी का क्रोध और मन्थरा का लोभ, उस अयोध्या में रामराज्य की स्थापना कैसे हो सकती है ? रामराज्य का तात्पर्य ही है–काम, क्रोध और लोभ के आवेशों पर नियंत्रण । जो व्यक्ति अपने जीवन में ऐसा करने में समर्थ होगा, उसमें रामराज्य का अवतरण होगा । जो समाज अधिकतर ऐसे व्यक्तियों के समुदाय से निर्मित होगा, वह रामराज्य का अधिकारी होगा । इसलिए हमने कहा कि रामराज्य की प्रथम स्थापना चित्रकूट में होती है और केवट उसका प्रथम नागरिक बनता है । जब श्री भरत श्री राम को अयोध्या वापस लौटाने चित्रकूट पहुँचते हैं, तब तक श्री राम के उदात्त जीवन से वहाँ रामराज्य बन चुका होता है । जब श्री भरत चित्रकूट के समीप पहुँचते हैं, तो उन्हें सर्वत्र रामराज्य की आभा दृष्टिगत होती है । गोस्वामीजी 'मानस' में लिखते हैं–

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी ।
त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी ॥
जाई सुराज सुदेस सुखारी ।
होहिं भरत गति तेहि अनुहारी ॥
रामवास वन संपति भ्राजा ।
सुखी प्रजा जनु पाई सुराजा ॥
सचिव विरागु विवेकु नरेसू ।
विपिन सुहावन पावक देसू ॥
भट जम नियम सैल रजधानी ।
सांति सुमति सुचि सुंदर रानी ॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ ।
राम चरन आश्रित चित चाऊ ॥
जीति मोह महिपालु दस सहित विवेक भुआलु ।
करत अकंटक राजु पुरँ सुख संपदा सुकालु ॥ २/२२५

अर्थात् जब श्री भरत चित्रकूट के क्षेत्र में पहुँचे तो उन्हें लगा 'अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहों, टिड्डियों और तोतों के उत्पात तथा दूसरे राजा की चढ़ाई इन छः उपद्रवों के भय से दुखी हुई तथा तीनों तापों, क्रूर ग्रहों और महामारियों से पीड़ित प्रजा किसी उत्तम देश और उत्तम राज्य में जाकर सुखी हो गयी है । श्री राम के निवास से वन की सम्पत्ति ऐसी सुशोभित है, मानो अच्छे राजा को पाकर प्रजा सुखी हो । सुहावना वन ही पवित्र देश है । विवेक उसका राजा है और वैराग्य मंत्री है । यम यानी अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अंपरिग्रह तथा नियम यानी शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान योद्धा हैं । पर्वत राजधानी है, शान्ति तथा सुबुद्धि दो सुन्दर पवित्र रानियाँ हैं । वह श्रेष्ठ राजा राज्य के स्वामी, अमात्य, सुहृद्, क्रोध, राष्ट्र, दुर्ग और सेना इन सात अंगों से पूर्ण है और श्री रामचन्द्र के चरणों के आश्रित रहने से उसके चित् में चाव है । मोहरूपी राजा को सेना सहित जीतकर विवेकरूपी

राजा निष्कण्टक राज्य कर रहा है । उसके नगर में सुख, सम्पत्ति और सुकाल वर्तमान है । बेल, वृक्ष, तृण सब फल और फूलों से युक्त हैं । सारा समाज आनन्द और मंगल का मूल बन रहा है ।''

इन शब्दों में गोस्वामीजी ने रामराज्य का चित्रण किया । वे संकेत देते हैं कि अयोध्या में रामराज्य तब बना, जब श्री भरत अपने चौदह वर्षों की कठोर तपस्या और संयम से वहाँ की काम, क्रोध और लोभमूलक प्रवृत्तियों को दूर करने में सफल हुए । उधर श्री राम चित्रकूट से अयोध्या लौटना स्वीकार नहीं करते और वन को चले जाते हैं और इधर भरत जैसे महान् सन्त चौदह वर्षों तक अपने दिव्य चरित्र के द्वारा ऐसा यज्ञ प्रज्वलित करते हैं कि उसकी अग्नि में अयोध्या का सारा कलुष, सारी वासना दग्ध हो जाती है, समस्त बुराइयों का नाश हो जाता है । और तब श्री राम का राज्य अयोध्या में स्थापित होता है । श्री राम चौदह वर्षों तक बाह्य शत्रुओं का नाश करते हैं और आन्तरिक शत्रुओं का विनाश श्री भरत करते हैं । इस प्रकार जब बाह्य और आन्तरिक शत्रु विनष्ट हो जाते हैं, तब रामराज्य बनता है । रामराज्य केवल बाहर से नहीं बनाता। बाहर और भीतर दोंनो से बनता है । जब तक अयोध्या में मंथरा है और लंका में शूर्पणखा, तब तक रामराज्य नहीं आ सकता । मन्थरा है लोभवादी विचारधारा और शूर्पणखा, भोगवादी विचारधारा । जब तक समाज में लोभ और वासना का साम्राज्य है, तब तक रामराज्य नहीं बनेगा । रामराज्य तब बनेगा, जब हममें यज्ञ-कर्म का उदय होगा तथा भरत-चरित्र के रूप में परम त्याग प्रकट होगा । जब अयोध्या में यह भरतरूपी दिव्य आत्मत्याग उपस्थित होता है, तब वहाँ रामराज्य की भूमिका निर्मित होती है और श्री राम खिंचकर भरत से मिलने के लिए व्यग्र होकर अयोध्या लौट आते हैं ।

जब श्री राम वन से अयोध्या लौट आते हैं, तो गुरु वशिष्ट कहते हैं कि राघवेन्द्र को राज्याभिषेक के लिए स्नान करा दो । सेवक उनहें स्नान कराने के लिए प्रवृत्त होते हैं, पर श्री राम कहते हैं–''मुझे गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य है, मैं स्नान करूँगा, पर 'प्रथम सखन्ह अन्हबाबहु जाई'–पहले मेरे मित्रों को स्नान करवाओ ।' उनके मित्र कौन हैं ? बन्दर ! अर्थात् रामराज्य का श्री गणेश राजा से नहीं, अपितु सबसे नीचे के व्यक्ति से–बन्दरों से हुआ । रामराज्य का तात्पर्य यह नहीं कि सुख का बँटवारा ऊपर से हो और वह नीचे तक पहुँच ही न पावे, बल्कि यह कि सुख सबसे नीचेवाले व्यक्ति से प्रारम्भ हो और अन्त में सबसे ऊपर वाले के पास पहुँचे। अभिप्राय यह कि जब श्री रामराज्य प्रारम्भ होगा वह वन से, गिरिजनों से होगा और सबसे बाद में नगर के लोग उसके नागरिक बनेंगे । इसीलिए बन्दरों को सबसे पहले स्नान कराया गया ।

फिर श्री राम अपने तीनों भाइयों को अपने हाथ से नहलाते हैं–'अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई ।' वे अपने हाथ से श्री भरत की जटाओं को खोलकर सुलझाते हैं–निज कर राम जटा निरूआरे ।' और जब वे स्वयं स्नान करते हैं, तो और किसी को स्नान नहीं कराने देते, अपितु अपने ही हाथों से अपनी जटा सुलझाते हैं और नहाते हैं'–मुनि निज जटा राम बिबराए । गुर अनुशासन मानि नहाए ।' यही रामराज्य का रूप है । राजा स्वयं सत्ता का नहीं, सेवा का प्रेमी है । श्री राम सोचते हैं कि रामराज्य तो भरत ने बनाया है, अतः पहले उसकी सेवा कर लें । लंका का युद्ध बानरों ने जीता है, अतः सेवा प्राप्त करने का प्रथम अधिकार उनका है । वे स्वयं किसी की सेवा नहीं लेते, हजारों सेवकों और उत्कृष्ट अनुजों के होते हुए भी वे अपना सारा कार्य स्वयं ही करते हैं ।

स्नानादि से निवृत्त हो वस्त्राभूषण धारण कर बाद में वे अयोध्या के नागरिकों को बुलाते हैं और उनसे कहते हैं–

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई ।
मम अनुसासन मानै जाई ।

–मुझे वे ही प्रिय हैं, जो मेरे अनुशासन का पालन करेंगे । अनुशासन क्या है ? वे बतलाते हैं–

जौं अनीति कछु भाषौं भाई ।
तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ॥

–यदि मुझसे नीति के विरूद्ध कोई कार्य हो, तो आप लोग बिना किसी भय के मुझे रोक दें । श्री राम के इस कथन में कोई असाधारणता नहीं है, कोई भी शासक यही बात कहेगा। असाधारणता है श्रीराम की अनुशासन की व्याख्या में । उनका यही राजा राम का अनुशासन है और 'मानस' का राम राज्य है, जिसके सम्बन्ध में गोस्वामीजी लिखते हैं–

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा ।
सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना ।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥

–'वहाँ कम उम्र में मृत्यु नहीं होती, किसी को कोई कष्ट नहीं होता, सबका शरीर सुन्दर और निरोग है । न कोई दरिद्र है, न दुखी, न कोई दीन है, न मूर्ख, न ही कोई शुभ लक्षणों से रहित है । ❑

चार सौवं प्रकाश उत्सव पर विशेष

प्रभु मिलन की राह दिखाए श्री गुरु ग्रंथ साहिब

–इरविन खन्ना

लोभ-मोह और अहम से भरी मानव जाति को सुख-दुख के चक्कर से निकालने की राह श्री गुरु ग्रंथ साहिब दिखाता है । श्री गुरु ग्रंथ साहिब में लगभग ५०० वर्षों के समय जिसे मध्यकालीन युग के नाम से जाना जाता है और उस दौर में भारतीय समाज संकट के दौर से गुजर रहा था उस समय संतों ने अपनी जिस अमृतवाणी से समाज को एक नई दिशा प्रदान की उन्हीं का संकलन श्री गुरु ग्रंथ साहिब में श्री गुरु अर्जुन देव जी ने कराया । यह कह सकते हैं कि गुरु ग्रंथ साहिब में भारतीय दर्शन के मानवीय पक्ष को उच्चतम रूप में प्रस्तुत किया गया है । श्री गुरु ग्रंथ साहिब में धर्म, दर्शन इतिहास के साथ-साथ युग विशेष की परिस्थितियों को खोजा जा सकता है । सामाजिक कुरीतियों को समाप्त कर मानव को उस परमपिता परमात्मा से मिलन की राह दिखाने वाला ग्रंथ साहिब घोषित करता है,

ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरू ।
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ।

'ओंकार एक है, सत्य उसका नाम है । वह सृष्टि का रचयिता पुरुष है । वह भय से रहित है, उसे किसी से वैर नहीं, (भय और वैर द्वैत की उत्पत्ति है) वह कालातीत (अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान से परे) है, इसलिए नित्य है, वह अयोनी है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से मुक्त है, वह स्वयंभू है (स्वयं प्रकट होने वाला है), उसकी लब्धि मात्र सतिगुरु की कृपा से ही संभव है।' अतः गुरु जी कहते हैं कि हे नानक ! नाम की भक्ति करने वाला निरंतर खिला रहता है, नाम श्रवण से सब प्रकार के कष्ट और पाप कट जाते हैं ।'

'प्रभु-नाम का मनन करने वाले मुक्ति के द्वार अर्थात् सत्य-ज्ञान को पा जाते हैं । अपने सगे-संबंधियों, मित्र कुटुम्बियों को भी सुधार लेते हैं (या आधार सहित बनाते अर्थात् प्रभु शरण में ले आते हैं) मननशील प्राणी स्वयं तो संसार-सागर से तिरते ही हैं, पथ-प्रदर्शक बनकर दूसरों के मोक्ष का भी कारण बनते हैं । गुरु नानक जी कहते हैं कि नाम मनन वाला जीव चौरासी के आवागमन (चौरासी लाख योनियों का चक्र) से सुरक्षित हो जाता है ।' (जीव के लिए उपदेश है) (हे भाई!) मोह की वृत्ति को जलाकर (कोयला कर दो और उस कोयले को) पीसकर स्याही बनाओ । अपनी मति का सुंदर कागज बनाओ । प्रेम की लेखनी करो, मन को लेखक बनाकर गुरु के बताए विचारों को लिखो । (अपनी बुद्धि के कागज पर) हरि नाम लिखो, परमात्मा की प्रशस्ति लिखो और उसकी अनंतता का वर्णन लिखो । हे भाई, उक्त प्रकार का लेखा (हिसाब-किताब) लिखने की तरकीब सीखो, ताकि जहाँ (प्रभु के दरबार में) तुम्हारे लेखों की जांच हो, वहाँ उन लेखों की परवानगी तुम्हारे पास पहले से मौजूद हो ।'

'जब शरीर में से प्राण निकल जाते हैं, शरीर सुना, डरावना और चेतनाहीन हो जाता है । (मुनष्य की दशा ऐसी हो जाती है जैसे) जलती हुई अग्नि बुझ गई हो (चेतना शून्यता) उसमें से धुआँ भी न निकल रहा हो (श्वास भी उसमें न हों) पांचों इंद्रियाँ व्यर्थ में ही दुखी होकर द्वैत भाव से खप गईं (अर्थात् इंद्रियाँ माया पथ पर लगी रहीं ।) हे मूर्ख नासमझ जीव, अपने में गुणों की वृद्धि कर और प्रभु का नाम जप । सृष्टि तो समूची मोह, ममता ओर अहंकार से युक्त है (उसमें चित्त लगाने से कोई लाभ नहीं) जिन जीवों ने दूसरे (विकृत) कार्यों में संलग्न होकर नाम को विस्मृत कर रखा है, वे मन की अस्थिरता में खप जाते हैं । उनके भीतर की तृष्णा अग्नि कभी शांत नहीं होती । जो (जीव) गुरु की शरण में आ गए वे ही बच पाए, शेष सब विषय-विकारों में ठगे रहे । संसार की प्रीति आकर्षण, पारस्परिक वैर विरोध, सब नष्ट हो जाते हैं (नश्वर हैं) । (शरीर के नाश होने के साथ ही मनुष्य का) व्यवहार तथा ममता, माया, क्रोध आदि वृत्तियाँ भी नाश हो जाती हैं । (केवल वे ही जीव) जिन पर सच्चे गुरु की कृपा होती है, इंद्रियाँ-निरोध द्वारा उस सर्वसत्य ज्ञान को प्राप्त कर पाते हैं । सच्चे कर्मों से गुरु आदेशानुसार आचरण करने पर ही सच्चा (परमात्मा) मिलता है । (और जिसे परमात्मा मिल जाता है, फिर वह मनुष्य; जन्म-मरण और अवागमन से मुक्त हो जाता है । गुरु नानक जी कहते हैं कि वह जीव परमात्मा के दरबार में सम्मानित होता है ।'

'इस शरीर को धरती बनाओ, शुभ कर्मों का बीज बोओ और प्रभु के नाम-स्मरण के जल से उसे सींचो। मन को किसान बनाकर परमात्मा के साक्षात्कार की खेती कर लो, इसी में मोक्ष का रहस्य है । ऐ मूर्ख, माया का अहंकार क्यों करता है, इस संसार में माता-पिता, पुत्र-स्त्री कोई भी अंत समय तुम्हारा सहायी नहीं होगा । विषय विकारों के बेकार पौधों को (जो खेती खराब करते हैं) उखाड़ फेंको और इनको हटाकर अंतर मगन हो जाओ । (जैसे किसान की खेती के लिए चौकन्ना रहना होता है, वैसे) जप, तप, संयम द्वारा धरती (शरीर) को तैयार करो, तब वहाँ कमल खिलेंगे (हृदय कमल) और मधु रस टपकेगा (नाम का रस प्राप्त होगा) ।'

श्री गुरु ग्रंथ साहिब बिना किसी भेदभाव के मानव को उसके जीवन का लक्ष्य व उस लक्ष्य की प्राप्ति कैसे हो सकती है, वह राह दिखाता है । श्री गुरु ग्रंथ साहिब के ४०० साला प्रकाशोत्सवा में बिना किसी भेदभाव के सभी को शामिल होना चाहिए क्योंकि यह एक का नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति का है । ❑

फूलों की घाटी तथा हेमकुण्ड-सरोवर की यात्रा

–डा० निवेदिता बक्शी, कुर्ला, मुम्बई

हमारा भारतवर्ष कितना सुंदर है, यह हम भारत-वासियों को साधारणतः नहीं ज्ञात है। भारत के कोने-कोने में अद्भुत, पवित्र और रोमांचक स्थल हैं। हिमालय पर्वत की बात ही कुछ और है और उत्तरांचल तो भारत की पवित्र तपस्यास्थली है। इस बार मेरे मन में हेमकुण्ड सरोवर तथा फूलों की घाटी देखने की इच्छा जगी। इस बारे में मुझे मेरे जेठ डा० प्रदीप कुमार बक्शी तथा मेरी मित्र डा० नीलिमा सरकार से पता लगा था। तथा मैंने पुस्तकों में भी पढ़ा था। यह स्थान हिमालय पर करीब १२,००० फीट की ऊँचाई पर है।

कहीं जाने के लिए बहुत पहले से ही तैयारियाँ करनी पड़ती हैं। हमने 'जोशीमठ' और 'घांघरिया' में रहने के लिये गढ़वाल निगम के टूरिस्ट बंगले में बुकिंग करायी। प्रति दिन का किराया करीब ४००) है। दिल्ली जाने के लिये राजधानी एक्सप्रेस में तीनटायर ए० सी० में बुकिंग करायी करीब १ महीना पहले। ट्रेन किराया प्रति व्यक्ति १५००) है। हम तीन लोग, मेरे पति, मेरा पुत्र पार्थ और मैं जाने वाले थे। हमने १५ दिन की छुट्टी ली। यात्रा में अगर पहले से ही बुकिंग आदि कर लिया जाय और जरा पहले से ही तय कर लिया जाय तो दिक्कतें कम होती हैं।

यात्रा के लिए हमने निम्नलिखित चीजें लीं–गरम ऊनी कपड़े, गरम मोजे, जूते, वेसलिन, दवाइयाँ, इलेक्ट्रिक जग, चाय और काफी बनाने का समान, टार्च, रेनकोट, पिपरमेंट और कुछ मेवे आदि।

हेमकुण्ड सरोवर एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल है जहाँ हिन्दू धर्म और सिख धर्म का समन्वय है। इसे 'लोकपाल तीर्थ' भी कहते हैं। यह भी लक्ष्मण जी की और गुरु गोविन्द सिंह जी (जो सिक्खों के दसवें गुरु हैं) की तपस्या स्थली है। गुरु गोविन्द सिंह ने अपनी आत्म-कथा में इस स्थान का वर्णन किया है कि उन्होंने पिछले जन्म में यहाँ पर तपस्या की थी। सचमुच, यह एक अद्भुत पवित्र तपस्यास्थली है जहाँ के स्पर्श मात्र से मानव के मन में अद्भुत परिवर्तन हो जाता है। श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपनी आत्मकथा 'बचीत्तर नाटक' में अपने पूर्व जन्म के बारे में लिखा है। राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र के दो पुत्र 'लव' और 'कुश' ने उत्तर भारत में कई हजार वर्षों तक मिलजुल कर राज्य किया। उन्होंने दो राज्यों की स्थापना लाहौर और कसुर पंजाब में की। उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र एक दूसरे के शत्रु बन गये। और एक दूसरे से लड़ते रहे। लव के एक नाती का नाम था 'सोदी' जो युद्ध में विजय प्राप्त करके पंजाब का राजा बन गया। कुश का नाती युद्ध में पराजित होकर 'बनारस' में बस गया। उसने वेदों का ज्ञान प्राप्त किया इसलिये उसके वंश को 'वेदी' भी कहते हैं। एक बार राजा सोदी ने अपने संबंधियों को अपने राजदरबार लाहौर में बुलाया। सब 'वेदी' लाहौर पहुँचे। राजा सोदी ने उन्हें वेद पाठ करने के लिये कहा। जब 'वेदी' तीनों वेदों का पाठ समाप्त करके चतुर्थ वेद में पहुँचे तो राजा सोदी अपनी राजगद्दी से उठे और अपनी राजगद्दी उन्हें भेट में दे दी और स्वयं तपस्या करने जंगल में चले गये। उन्होंने वर्षों तक वहाँ तपस्या की जहाँ पर सप्तशृंगी पर्वत था। वे तपस्या में इतने लीन हो गये थे कि उन्हें 'ईश्वरत्व' की प्राप्ति हो गयी। वे समाधि से उठना नहीं चाहते थे परन्तु ईश्वर ने उन्हें भारतवर्ष में दुष्टों के दलन के लिये भेजा और उन्होंने अपनी इच्छा के विरुद्ध जन्म ग्रहण किया।

इह विधि करत तपस्या भयो
देवाय ते एक रूप होवई गयो----
चित न भयो हमरो आवन कै।
चुभी रही श्रुत प्रभु चरणन मैं॥
जियो लियो हम को समझाइयो
इम कही के लोक पठाईयो॥

गुरु गोविन्द सिंह ने इस तपस्या स्थली का वर्णन किया है जिसे कई लोगों ने खोजने की कोशिश की जिसमें संत मोहन सिंग और हवलदार भौन सिंग, संत थंडी सोहन सिंग का नाम प्रसिद्ध है। हेमकुण्ड सरोवर की खोज की कहानी भी विचित्र है। मोहन सिंग और सोहन सिंग १९३६ में भंडार गाँव पहुँचे और रतनसिंग के यहाँ ठहरे। फिर सब ने मिलकर हेमकुंड की यात्रा की। उन्हें पवित्र सरोवर दिखाई दिया। संत सोहन जी ने सरोवर में स्नान किया और जब 'बचीत्तर नाटक' पढ़ रहे थे तब उन्होंने सोचा हेमकुण्ड सरोवर शायद कहीं और है। उसी समय एक प्राचीन ऋषि वहाँ आये और संतजी से बोले–"संत जी, यह वही जगह है जिसे आप खोज रहे हैं" और उन्होंने तपोशिला पत्थर को भी दर्शाया। इतने में ऋषि अन्तर्ध्यान हो गये। इस प्रकार

इस जगह की खोज हुई और कितनी तकलीफों से गुरुद्वारा बनाया गया ।

समय—यात्रा का समय जुलाई से सितम्बर महीने तक है क्योंकि फूलों की घाटी में करीब १००० किस्म के फूल इन्हीं महीनों में खिलते हैं । रास्ता तो बड़ा ही कठिन है । परन्तु अगर हम स्वामी विवेकानन्द के अनुसार अभय और श्रद्धा का सम्मिश्रण कर लें तो कोई भी कठिनाई हमें रोक नहीं पायेगी । तो चलियें, आप सब भी हमारे साथ यात्रा को चलिये ।

यात्रा शुरू हुई मुम्बई के कुर्ला से। ठाकुर, माँ, स्वामीजी की जय घोषित करते हुए हम टेक्सी से मुम्बई सेन्ट्रल पहुँचे । दिन था ८ जुलाई २००४ । राजधानी एक्सप्रेस सजधज कर हमारे स्वागत के लिये खड़ी थी । हमने उसका धन्यवाद ज्ञापन किया और सामान के साथ बातानुकूलित डब्बे में चढ़े । गाड़ी एकदम नयी थी और उसमें उत्तम व्यवस्था । खाना-पीना सब टिकट के साथ ही था । गाड़ी ठीक समय पर गन्तव्यस्थल के लिये रवाना हुई । थोड़ी ही देर में साफ सुथरे ट्रे पर नाश्ता आ गया । समोसा, कोल्ड ड्रिंक, सेव चूड़ा, गुलाब जामुन आदि बड़े सलीके से दिया गया । ६ बजे टमाटर सूप और ८ बजे भोजन परोसा गया । चद्दरें, कम्बल सब साफ सुथरे। रात को हम चैन की नींद से सोये ।

सबेरे मैं जल्दी उठ जाती हूँ । हाथ मुँह धोकर जपध्यान किया । इतने में ही चाय बिस्कुट और समाचार पत्र आ गया । ठीक ८ बजे नाश्ता आ गया और गाड़ी मथुरा स्टेशन पार कर रही थी तो हमें लगा कि अब दिल्ली दूर नहीं । ठीक दस बजे राजधानी एक्सप्रेस राजधानी में खड़ी थी ।

हमने एक टेक्सी ली और सीधे बस-स्टैण्ड पर पहुँचे । वहाँ पर हमें ऋषिकेश के लिये वातानुकूलित बस मिल गयी । किराया था ५५०/प्रति व्यक्ति । बस रवाना तो हुई पर ठीक लालकिले के पास यात्रियों के लिये खड़ी हो गई । जब तक बस यात्रियों से पूरी भर नहीं गयी तब तक रुकी रही । अब बस पूरी भर चुकी थी जिससे १० विदेशी यात्री थे जो भारत भ्रमण करने आये थे । एक जोड़ा विचित्र वेशभूषा में था । दोनों के गले तथा सिर पर फूलों की माला थी । अब बस रवाना हुई । यह विदेशी जोड़ा कभी तो बस में चढ़ रहा था कभी मोटर साइकिल पर जा रहा था । उसके कारण सब यात्रीगण तकलीफें झेल रहे थे, पर उन्हें कोई परवाह नहीं थी । बाहर में काफी धूप थी । रास्ते में हरियाली छायी हुई थी । आगे रास्ता बंद होने के कारण हमें काफी घुमाया गया । देहरादून से फिर हम ऋषिकेश पहुँचे । जहाँ हमें ६ बजे पहुँचना था वहाँ हम पहुँचे रात के १० बजे । हम थक कर चूरचूर हो गये थे ।

रिक्शा पकड़ कर हम बस स्टैण्ड के पास वाले होटल में गये । नहा-धो कर विश्राम किया । रात का भोजन किया और तुरंत निद्रा देवी की गोद में चले गये सबेरे हम सब जल्दी उठकर ८ बजे तक तैयार हो गये। समाचार पत्र में देखा तीन दिनों से जोशीमठ जाने का रास्ता बंद है । पहाड़ों को डायनेमाइट से तोड़कर रास्ता तैयार किया जा रहा है इस कारण पहाड़ के पत्थर ढीले पड़ गये हैं और रास्ते में गिरते जा रहे हैं । प्रकृति के साथ छेड़खानी करने पर मानव को भुगतना ही पड़ेगा । इस कारण दो टाटा सूमो कार यात्री सहित पत्थर गिरने से मन्दाकिनी नदी के गर्भ में चली गयी। यही हाल बदरीनाथ के साथ हो रहा है, हम सामान लेकर जैसे ही बस स्टाप पर गये, चमोली जाने के लिये बस खड़ी थी । किराया १२०/प्रति व्यक्ति । हम बस में सामान सहित चढ़ गये । हम हर छोटा सा छोटा रास्ता तय करने के पहले ठाकुर माँ की जयघोषणा अवश्य करते और उसी श्रद्धा विश्वास के बल पर हम बिना किसी कठिनाई के आगे बढ़ते रहते थे ।

ऋषिकेश के आगे प्रकृति की सुन्दरता देखते ही बनती है । पहाड़ ऊँचे-ऊँचे, नीचे भागीरथी नदी कलकल करती हुई बह रही है । चारों ओर हरियाली आँखों को ठंडक पहुँचाती है । हरे भरे वृक्ष नदी के किनारे और पहाड़ पर तरुण तपस्वी की भाँति खड़े हैं । बादल पहाड़ों पर नृत्य करते हुए चले आ रहे हैं तो कहीं पहाड़ के कोने से झरना बह रहा है । रास्ता घुमावदार है । ड्रायवर बड़ी कुशलता से गाड़ी चला रहा है । अब हम ऊँचाई पर चढ़ रहे हैं । प्रकृति की सुन्दरता मन को स्वतः ही पवित्रता और उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित कर देती है ।

हम देव प्रयाग पहुँचे । यह १०२० फीट ऊँचाई पर बसा है । यहाँ पर दो नदियों-भागीरथी और अलकनन्दा का संगम है । यह स्थान एक सुन्दर चित्र की तरह लगता है । यहाँ से बस श्रीनगर जाती है । यह भी अत्यन्त रमणीय स्थल है । बड़ा सा ताल है । आगे रुद्र-प्रयाग है । यहाँ पर भी दो नदियों का संगम है । यहाँ पर बस रुकी । सबने थोड़ा नाश्ता किया । अभी दिन के १० बज रहे हैं । बसस्टाप के पास कई दुकानें थीं । मैंने बहुत ही हल्का नाश्ता किया । पहाड़ी रास्तों पर खाली पेट यात्रा तथा अधिक भोजन करना भी उचित नहीं है । तेलवाली चीजें बिल्कुल नहीं खानी चाहिये । यह १२०० फीट की ऊँचाई पर स्थित है और कई सुन्दर फूलों से

लदे हुए पेड़ खड़े दीख पड़े। यहीं से रास्ता केदारनाथ और बदरीनाथ के लिये अलग से जाता है । मंदाकिनी और अलकनन्दा का संगम स्थल रुद्रप्रयाग भी नारद की तपस्या स्थली है । यहाँ पर भगवान शंकर की रुद्र रूप में आराधना की जाती है । नदी के किनारे बसी हुई नगरी कितनी सुन्दर दिखाई देती है ! इसके २२ किमी० दूर पर गोचर और हम नन्दप्रयाग होते हुए 'चमोली' पहुँचे । हमें 'जोशीमठ' जाना है ।

जोशीमठ के लिये टाटा सूमो जैसे हमारे लिये ही खड़ी थी । हम जल्दी से सामान लेकर चढ़ गये । लाखों की संख्या में सिक्ख हेमकुण्ड की यात्रा के लिये जाते हुए दिखाई दिये। कोई पैदल, कोई सायकल पर, कोई जीप पर, कोई बस में। जोशीमठ का किराया है २०/प्रति व्यक्ति । हम डर-डर कर जा रहे थे कि रास्ता खुला मिलेगा कि नहीं । पर ड्रायवर को कोई चिंता नहीं, जान हथेली पर लेकर गाड़ी चला रहा था । रास्ते में प्रकृति हमें अभय प्रदान कर रही थी । पहाड़ पर कितने ही किस्म के वृक्ष थे-चीर, चिनार, आदि और तरह-तरह के फूल कतारों में इस पवित्र भूमि को अलंकृत कर रहे थे। नदी का पानी भी लाली लिये हुए नीले रंग का था । अब शाम के ४ बज रहे थे। बीच में कठिन, सकरा और कच्चा रास्ता था, पर ड्रायवर जहाँ तक बन रहा था गाड़ी को आगे ले जा रहा था । रास्ते में दो व्यक्तियों ने मिलकर गाड़ी को रोका। 'एक पुत्र अपने बीमार पिता को इलाज के लिये जोशीमठ अस्पताल ले जाने की कोशिश कर रहा था । ड्रायवर दयालु और सहृदय था । उसने उन्हें तकलीफ के बावजूद भी जीप में उठा लिया । ऐसे पहाड़ी रास्तों में मरीज में भी काफी मनोबल रहता है। यहाँ पर बड़े अस्पतालों की सुविधा नहीं है । लोग ज्यादातर पैदल या जीप, बस से चलते हैं । अब गाड़ी हेलांग पर रुकी । पहाड़ से पत्थर गिरकर रास्ता बंद हो गया था । एक ट्रेक्टर रास्ते के मलवे को साफ कर रहा था । लोग रास्ता पार करने के लिए बैचेन थे । मलबे का ढेर भर-भर कर करीब ४० फीट ऊँचा हो गया था । कई लोग मलबे के ऊपर से रास्ता पार कर रहे थे । पर यह खतरे से खाली नहीं था । पहाड़ पर से छोटे- छोटे पत्थरों की बरसात बीच-बीच में होती ही जा रही थी। हमें वहीं छोड़कर टाटा सूमों चली गयी । अब हमारे सामने दो रास्ते थे–या तो पीपलकोट वापस जा कर रात गुजारें या मलबे के ऊपर चढ़कर उस पार जायें ।

हमारे बेटे में आत्म बल और तत्काल निर्णय लेने की अद्‌भुत शक्ति है । उसने तुरंत मुझे सूटकेस खोलकर जूता पहनने के लिये कहा और फिर दो शेरपा को बुलाकर कुछ ज्यादा पैसे देकर सामान को मलबे से चढ़ाकर उस पार ले गया । अब मेरे चढ़ने की बारी थी। मेरे पीछे मेरे पतिदेव थे । मैं साहस जुटाकर जैसे हीं ऊपर तक चढ़ी कि सहारा के अभाव में फिसलने लगी । इतने में एक युवक आकर मेरे हाथों के सामने एक गड्ढा बनाया और मुझे सहारा देकर उस पार ले गया । इतने में पार्थ ने शेरपा को हमारी सहायता के लिये भेजा और हम उसका हाथ पकड़कर रास्ते के उस पार पहुँचे और ठाकुर माँ को धन्यवाद दिया । पार्थ ने दौड़कर एक जीप पकड़ी और हम सामान सहित उसमें चढ़ गये । किराया था २०/प्रति व्यक्ति और हम १ घंटे में २० किमी० दूर जोशीमठ पहुँच गये ।

शाम अब खत्म होकर रात की चादर में छिप रही थी। जोशीमठ अत्यन्त सुंदर पहाड़ों से घिरा हुआ ज्योतिर्मय शहर है । हम सीधे सामान सहित गढ़वाल टूरिस्ट बंगले में पहुँचे । वहाँ पर हमारा आरक्षण पहले से ही था । हमें अत्यन्त उम्दा कमरा मिला जिससे गरम पानी की सुव्यवस्था थी । हम अत्यधिक थक गये थे । स्नान आदि समापन करके भोजन के लिये शहर में गये । देखा तो रास्ते में खूब भीड़ है । पास में जाकर देखा तो पाया कि एक मंत्रीजी को भीड़ ने घेरकर रखा था । भीड़ में सभी यात्री थे जो रास्ता बंद होने की वजह से तीन दिनों से रास्तें में ही पड़े थे । न खाने की, न रहने की कोई व्यवस्था । इस कारण यात्रीगण नाराज थे । मंत्रीजी उन्हें धीरज दे रहे थे । इधर एक स्थानीय मंडल गरम गरम पूरी सब्जी खिला रहे थे । हमने भी खाया । तत्पश्चात् हम एक छोटे से होटल में गये । वहाँ पर हम भोजन के लिये गये । हमारे पास में ही एक संन्यासी स्वामी सोमानन्द जी बैठकर भोजन कर रहे थे । उनका आश्रम हरिद्वार में 'गीतविहार' है । वे बदरीनाथ में फँसे हुए यात्रियों की सेवा के लिये बदरीनाथ जा रहे थे । कितनी निष्ठा और त्याग है उनमें ! उन्होंने मुझे कहा कि आपको मलबे के ढेर पर चढ़ता देखा । मैं भी उत्साहित हुआ और चढ़ गया । पर इस पार पहुँच कर कोई भी वाहन नहीं मिला सब लोग भी जा चुके थे । अतः मैं पैदल २० किमी० चलकर अभी-अभी जोशीमठ पहुँचा हूँ । देखिये कितनी शक्ति है उनमें और ठाकुर की हम पर इतनी कृपा है। हम तो कभी भी पैदल चलकर इतने सामान के साथ नहीं पहुँच सकते थे । हमने रात को विश्राम किया और सबेरे जोशीमठ देखने के लिये निकले ।

स्कन्दपुराण के केदार खंड में वर्णित चित्र में जोशीमठ को कार्तिकेयकी नगरी कहा गया हैं । जोशीमट से होती हुई विष्णु प्रयाग विष्णु गंगा और धौली नदी

जाता है और यह चारों ओर से पर्वतों से घिरा हुआ है। यह शंकराचार्य की तपस्यास्थली है । यहाँ पर श्री बदरीनारायण की ६ माह पूजा होती है । इसे ज्योतमठ भी कहते हैं। यहीं पर शंकराचार्य जी को ज्ञान प्राप्त हुआ था । जोशीमठ हेमकुण्ड, तिब्बत तथा बदरीनाथ जाने का केन्द्र स्थल है । सर्वप्रथम हम ज्योतिर्मठ गये । वहाँ रामसीता की सुन्दर मूर्ति की पूजा हो रही थी । पास में ही एक कल्पवृक्ष है जिसके नीचे ज्योतीश्वर महादेव का मंदिर है । ये स्वयंभू लिंग हैं वहाँ उस समय महादेव का अभिषेक किया जा रहा था । हमने भी प्राणों से महादेव की पूजा की । वहीं पास में पूर्णगिरिदेवी का मंदिर है और शंकराचार्य की गद्दी है । इसी कल्पवृक्ष के नीचे शंकराचार्य जी ने तपस्या की थी । कल्पवृक्ष अर्थात् कल्पों तक (युगों तक) सदा यौवन रूप में रहेगा और मनोवांछित फल देने वाला है । इस कारण जगतगुरु शंकराचार्य को मनोवांछित फल 'ज्ञान' प्राप्त हुआ था । यह शहतूत प्रजाति का वृक्ष है इसे 'केमू वृक्ष' भी कहते हैं । इसका विशाल तना १७ मीटर चौड़ा है । मंदिर के ऊपर चमकीली पत्तियाँ एक यौवन वृक्ष को भी लज्जित करती हैं । भारतवर्ष में इतना पुराना और हराभरा वृक्ष और कहीं नहीं है । यह ज्योतिर्मठ की ज्योति है जो मानव को सदा हरा भरा रहने का उपदेश देती है । यहाँ का दृश्य बड़ा ही सुंदर है । बड़े-बड़े पहाड़ दिखाई देते हैं । कल्पवृक्ष के नीचे एक प्राकृतिक प्राचीन गिरि गुफा है । यहीं पर शंकराचार्य जी को ज्ञान प्राप्त हुआ था जोशीमठ को ऋतम्भरा नगरी भी कहते हैं । इसका अर्थ है एक ही दिन में सब ऋतुओं का आभास होता है । प्रातःकाल यदि मेघाछन्न आकाश के दर्शन होते हैं तो कुछ क्षणों बाद नीलाकाश सुशोभित होता है । तो कभी चमचमाती धूप निकलती है तो कभी शीत लहर का आभास होता है ।

वहाँ से हम नृसिंह मंदिर देखने गये । यह काफी नीचे है । यहाँ पर घर-घर में सुन्दर-सुन्दर फूल खिले हुए हैं, सीढ़ी उतरते-उतरते हम थक गये । तब जाकर मंदिर आया, वास्तव में मंदिर का निर्माण निवास-स्थान की तरह है जहाँ पर शंकराचार्य जी संध्या वंदन करते थे । उनके उपास्य देव भगवान नृसिंग की शालिग्राम शिला पर बनी स्वयंभू मूर्ति है । बदरी विशाल के शीतकालीन पट बन्द होने पर इसी स्थान पर ६ महीने बदरी विशाल जी की पूजा होती है । यहाँ सवा मन चावल का भोग नित्य लगता है और साधु संतों को खिचड़ी बाँटी जाती है । भगवान नृसिंग को पार्श्व से दर्शन किया जाता है, हम वहाँ पर दस बजे गये थे । मंदिर का बहुत ही अच्छे से दर्शन किया । एक साधुजी से भी काफी बातें हुईं। वे बिहार के रहने वाले हैं । यहाँ आकर ध्यान पूजन आदि करते हैं । उनके पास ही घर पर सुन्दर चम्पा का पुष्प था । वह करीब १० इंच बड़ा था । यह पुष्प पास ही में उगता है और नृसिंग जी को चढ़ाया जाता है । इसका रंग इतना सुन्दर है कि एक बार देखने पर मन में छवि अंकित हो जाती है। इतने सुन्दर फूल के सृष्टिकर्ता कितने सुन्दर होंगे यह सोचने से ही मन पुलकित हो जाता है । हमने नृसिंग मूर्ति का अपलक दर्शन किया । वे पद्मासन मुद्रा में बैठे हैं और दोनों हाथ जंघाओं पर टिके हैं । मंदिर परिसर एकदम साफ सुथरा है और सुन्दर-सुन्दर फूल खिले हुए हैं । ऊपर माँ भवानी का मंदिर है । हमें भोग प्रसाद भी मिला ।

हम वापस चढ़कर टूरिस्ट बंगले में आ गये । भोजन आदि करके विश्राम कर रहे थे । टूरिस्ट बंगले के बाहर बैठने की सुव्यवस्था है । यहाँ सुन्दर फूलों का बगीचा है । सामने ही 'हाथी पहाड़' है । ऐसा लगता है कि यहीं पर युगों-युगों तक बैठे उस असीम शक्ति का ध्यान करें । यहाँ पर बादलों का खेल देखते ही बनता है । पलक झपकते ही बादल हाथीपहाड़ को ढंक देते हैं और पलक झपकते ही पहाड़ से बादल हट जाते हैं । दो बजे हमें खबर मिली कि जोशीमठ से गोविन्दधाम जाने का रास्ता साफ हो गया है । हमने अपना अधिक सामान वहीं टुरिस्ट बंगले में एक कमरे में रख दिया और सिर्फ दो सामान लेकर अगली यात्रा के लिये निकल पड़े । हमें 'टाटा सूमो' मिल गयी और हम तुरंत उस पर सवार हो गये । हमने यात्रा दूसरे दिन सबेरे ८ बजे शुरू की क्योंकि अगर हम गोविन्द धाम दिन में न पहुँचे तो हमें फिर वहाँ रुकना होगा । सबेरे ८ बजे हम गाड़ी में बैठे । एक डेढ़ घंटे में हम गोविन्दधाम पहुँचे। वहाँ पर छोटे से होटल से हमने गरम-गरम पूड़ी सब्जी खायी । वहाँ पर दो छोटे लड़कों के साथ हमारी दोस्ती हो गयी । ये लोग कितनी मेहनत करते हैं साथ-साथ पढ़ाई भी करते हैं । अब सामान लेकर करीब दो किलोमीटर चल कर हमने सुन्दर पुल पार किया । नीचे अलकनन्दा नदी बड़े वेग से बहती जा रही है । लाखों सिक्ख, छोटे बच्चे, बूढ़े सब श्रद्धा और उत्साह से हेमकुण्ड दर्शन को जा रहे हैं । रास्ते में कई दुकानें आयीं । कहीं कोई भी टेलिफोन काम नहीं कर रहा था ।

गोविन्दधाम बड़ा ही सुन्दर तीर्थ स्थल है । अलकनन्दा नदी के किनारे बसा हुआ है । कई दुकानें, गुरुद्वारा, व धर्मशाला, मकान आदि बने है । इसकी ऊँचाई करीब ६००० फीट है । लोग नयी-नयी इमारतें बना रहे हैं । पहाड़ी इलाकें में इमारतों के ऊपर टीनों की छत है जो त्रिकोणनुमा होती है, जिससे बारीश का पानी नहीं जम पाता है ।

हम अब आ गये उस स्थान पर जहाँ से हेमकुण्ड के लिये चढ़ाई शुरू होती है । पार्थ ने पैदल चढ़ने का निश्चय किया । मेरे पति और मैं दोनों ने घोड़े पर जाने का निश्चय किया । एक घोड़े के सवार के लिये हेमकुंड तक के आने-जाने का किराया १५०० है । हमने दो घोड़े लिये और यात्रा शुरू की । यात्रा के लिये निकलते समय जब हमने प्रकृति के दर्शन किये तो लगा स्वर्ग यहीं पर है । कलकल स्वरों में बहती हुई मंदाकिनी, ऊँचे-ऊँचे पहाड़, चारों ओर हरियाली, बीच-बीच में सुन्दर खिले हुए फूल, फर्न और झरने आदि देखकर हम मुग्ध हो गये । हमें रास्ते में कुछ दुकानें मिली, बाद में सिर्फ हम और प्रकृति । कई लोग खड़े होकर तुरंत रास्ते साफ कर रहे हैं । जगह-जगह पर कूड़ादान है । इस कारण रास्ते साफ सुथरे हैं । हमें अब घांघरिया पहुंचना था जो करीब १३ किमी० दूरी पर है । रास्ते में चढ़ाई ही चढ़ाई है । हमने यात्रा करीब १० बजे सुबह शुरू की । घोड़े पर सवार होने की वजह से हमें थोड़ी भी तकलीफ नहीं हो रही थी । हम मजे से प्रकृति का आनंद ले रहे थे । थोड़ी ही दूरी पर भ्यूभंडार गाँव है क्योंकि लोग दंड से बचने के लिये छोटी-छोटी गुफाओं में रहते हैं ।

गोविन्दघाट से पर्वतीय मार्ग अत्यन्त मनोरम है । यह वन संपदाओं से घिरा है । इस मार्ग के किनारे बुरांश उत्तीस खड़ीक और देवदारू आदि विशाल वृक्ष पंक्तिवद्ध खड़े हैं । ३ किमी० दूरी पर भ्यूभंडार का शीतकालीन निवास पुलना है । भ्यूभंडार गाँव देवदारू सुरई वृक्षों की छाया में बसा है । यहाँ की मुख्य फसलें हैं राजमा, आलू और फाफर, चीणा और रामदाना । रास्ते में विशाल ऊँचे पर्वत और उससे बहने वाले झरने दीख पड़ रहे हैं । ईश्वर की अनुकम्पा से हमें कहीं भी बारिश नहीं मिली। रास्ते में रुकने के लिये छोटी-छोटी सी चेटी है । थकने पर आप विश्राम कर सकते हैं । खाने की सारी चीजें मिलती हैं । हम एक छोटी-सी चोटी पर रुके जहाँ का दृश्य अतुलनीय था। सामने ही नदी वेग से वह रही थी । ऊँचे पहाड़ बड़े ही सुहावने लग रहे थे । चेटी के मालिक मुम्बई से ही आये हैं । उन्होंने हमें बहुत ही स्वादिष्ट मसालेदार नूडल प्रेम से खिलाये । उनकी मीठी वाणी हमारे मन में हमेशा के लिये बस गयी । सच, प्रेम भरे शब्दों में कितनी शक्ति होती है ! पहाड़ी जगहों पर स्वस्थ रहना बहुत ही जरूरी है । हम शाम को ५ बजे घांघरिया पहुँच गये । वहाँ भी हमने गढ़वाल निगम का टूरिस्ट बंगला आरक्षित करवाया था ।

टूरिस्ट बंगला हरे रंग का बना हुआ था । चारों तरफ विशाल पर्वत बर्फ से ढँके हुए और चिनार, देवदारू के लम्बे-लम्बे ध्यानमग्न वृक्ष । वहाँ के कर्मचारी बड़े ही सरल और हंसमुख थे हमने सबसे दोस्ती की । वहीं पर दूसरे यात्री मिले । वे ६ लोग थे । उनमें एक अमेरिका की डाक्टर थी और एक औरंगाबाद में डाक्टर थी । उनसे भी हमारी अच्छी दोस्ती हो गयी । पर वे सब केवल 'फूलो की घाटी' देखना चाहते थे । इतनी दूर आने के बाद भी हेमकुंड का दर्शन उनके नसीब में नहीं था । खैर अगले दिन वे 'फूलों की घाटी' देखने जाने वाले थे सो हमने भी उनके साथ 'फूलो की घाटी' देखने का निश्चय किया । रात को हमने पास के होटल में जाकर खाना खाया और फिर सो गये ।

यहाँ पर मौसम का कुछ ठिकाना नहीं है। जब कभी भी बारिश होने लगती है । इस कारण रेनकोट साथ में रखना जरूरी है । रात भर जोरों की बारिश हुई और दूसरे दिन सबेरे मौसम काफी साफ हो गया । सबेरा भी ५ बजे ही हो जाता है । हमने उठकर देखा बिजली नदारद थी । हमने पास के होटल में जाकर गरम पानी, चाय, काफी इत्यादि ली और स्नान करके गरम कपड़े पहन कर तैयार हो गये । 'फूलों की घाटी' घांघरिया से ५ किमी० दूरी पर है । वहाँ पर घोड़ा नहीं जाता है । इसलिये हमने पैदल जाने का निश्चय किया । औरंगाबाद की डाक्टर की तबीयत खराब हो गयी थी । उन्हें उल्टियाँ और दस्त होने लगे । इस कारण वे जा नहीं सकीं ।

हमने ऊनी कपड़े, लकड़ी और रेनकोट लिया और ठाकुर माँ का नाम लेकर चल पड़े । हेमकुण्ड ११,००० फीट की ऊँचाई पर है । यहाँ पर १००० से अधिक किस्म के फूल सिर्फ जुलाई से सितम्बर तक खिलते हैं। यह एक घाटी है और चारों ओर पहाड़ और पुष्पावली नदी घाटियों के बीच से बहती है । यह करीब २ किमी० चौड़ा और १० किमी० क्षेत्र तक फैला हुआ है। पुष्पावली नदी आगे जाकर लक्ष्मण गंगा नदी से घांघरिया में मिलती है । इसकी खोज जान मार्गरेट लेगी ने १९३९ में की थी । उसे यह क्षेत्र इतना पसंद आया कि हर वर्ष जून से अक्टूबर तक यहीं पर रहती और नित्य इसको परखती । कहते हैं, फूल देखते देखते उसकी सुगंध से और सुन्दरता से इतनी मोहित हो गयी कि पैर फिसलकर चट्टान से गिरकर उसकी मृत्यु हो गयी । फूलों की घाटी के अन्दर उसकी समाधि है । हमें फूलो की घाटी में प्रवेश करने के लिए ३० रु० का टिकट खरीदना पड़ा ।

सबसे पहले हमें १ किलोमीटर जाने के बाद एक वेगमयी झरने को कूद कर पार करना पड़ा । यहाँ पुल

नहीं था । अत्यन्त मनोरम स्थान है यह । जाते-जाते न जाने कितनी तरह के छोटे से छोटे अद्‌भुत फूल देखे । फूलों को देखकर और प्रकृति की सुन्दरता देखकर हम अपने को भूल गये । मेरी थकान जैसे कहीं भाग गयी। हम जंगल से होते हुए एक पुल पर पहुँचे । मेरी आँखें खुली की खुली रह गयीं । क्या प्रकृति इतनी सुन्दर हो सकती है ? कलकल करती हुई वेगमयी नदी, बादल से घिरे पहाड़, असंख्य प्रकार की वनस्पतियाँ, रंगबिरंगे फूल जैसे शिव का ध्यान कर रहे हैं । हमारा देहबोध न जाने कहाँ चला गया । हम कौन हैं; क्या हैं सब भूलकर प्रकृति को देखकर स्तब्ध हो गये । थोड़ी दूर जाकर हम फूलों की घाटी पर पहुँचे । वहाँ शिलाजित पहाड़ सिर ऊँचा कर खड़ा था । इसी के पत्थर को औषधि के रूप में इस्तेमाल किया जाता है । रास्ते में जैसे जामुनी रंग के एस्टर फूलों की बहार थी तो थोड़ी दूरी पर सफेद एन्ड्रोसी फूलों की बहार थी । सब मानो देवता की आवभगत की तैयारी में पवन के साथ झूम रहे हैं । कहीं गुलाबी जिरेनियम, नीले बोरज, कहीं क्रिपरीपेडियम मन को मोह रहे थे। घाटी दो पहाड़ों के बीच का स्थल है । और वह दूर-दूर तक फैली हुई थी; और पुष्पावली नदी आनंद मगन होकर बहती जा रही थी । गाईड हमारे साथ श्रीमान नेगी साहब थे । उन्होंने कह दिया आगे भी इसी तरीके का दृश्य है तो हमारे पति और पुत्र दो व्यक्ति वहीं रुक गये । मैं आगे बढ़ते गयी । जितना आगे बढ़ो उतनी अधिक सुन्दरता । मैं मंत्रमुग्ध होकर आगे बढ़ती ही जा रही थी । आगे कच्चा पुल था । कुछ लोग काम कर रहे थे । श्री नेगी साहब बैठकर किसी से बातें कर रहे थे। मुझसे कहा जोरों की बारिश आने वाली है । घंटे में लौट कर आइये । मैं अकेले-ही वादियो में चली जा रही थी । तरह-तरह के फूलों की सुन्दरता और हरी-भरी घाटी और पर्वत बड़े ही मोहक लग रहे थे । थोड़ी ही दूर पर मार्गरेट लेगी की समाधि है । लौटने को बिल्कुल मन नही कर रहा था । पर लौटना तो था ही, मैं यही सोच रही थी कि अगर प्रकृति जो ईश्वर की सृष्टि है वह इतनी सुन्दर है तो ईश्वर न जाने कितने सुंदर होंगे । अब मैं लौट रही थी । उतराई में कोई तकलीफ नहीं हो रही थी । रास्ते में पार्थ और मेरे पतिदेव मिले । सब मिलकर आनंद से लौट चले । 'हम घाटी पार करके जंगल में पहुँचे। फिर पुल पार किया । ऑफिस में पहुँचे । करीब शाम के ४ बजे तक टूरिस्ट बँग्ले में पहुँचे । जोरों की भूख लग रही थी । हमने गरम गरम दालभात खाया । बस जैसे ही अपने कमरे में पहुँचे जोरों की बारिश शुरू हो गई । हमने ईश्वर को असंख्य धन्यवाद दिया । बारिश में शायद हम इतना आनंद नहीं ले पाते ! हमने विश्राम किया । रात का भोजन जल्दी करके सो गये । फिर रातभर बारिश होती रही ।

दूसरे दिन हमें हेमकुण्ड जाना था । हमारे साथियों ने आकर खबर दी कि वे 'गोविन्दधाम' लौट रहे हैं । उन्हें हेमकुण्ड देखने की जरा भी इच्छा नहीं है । पवित्र तीर्थस्थल का दर्शन अनेक जन्मों के अच्छे कर्मफलों से होता है । तीर्थस्थल का दर्शन हम अपनी इच्छा से नहीं करते हैं । दैवी कृपा के साथ श्रद्धा भक्ति विश्वास और अच्छा कर्मफल होना जरूरी है । हम तीनों ने घोड़े पर जाने का निश्चय किया ।

हेमकुण्ड १२,५०० फीट ऊपर है और रास्ता ६ किमी० का है । घांघरिया से हम हल्का नाश्ता करके ९ बजे निकले । घांघरिया से कैंचीनुमा पगडंडी का मार्ग शुरू होता है । यह हेमकुण्ड सिक्ख और हिन्दू धर्म दो संस्कृतियों का सम्मेलन है । त्रेतायुग करीब पौने नौ लाख वर्ष पूर्व था । उस कालावधि से लेकर आज तक न जाने कितने प्राकृतिक परिवर्तन हुए होंगे । किन्तु हेमकुण्ड (लोकपाल-तीर्थ) आज अपने पुरातन अस्तित्व में विराजमान है । 'लोकपाल' शब्दों का प्रयोग पुराणों में क्षेत्रपाल, गढ़पतियों एवं भूमिसालो के पर्याय के रूप में किया जाता है । श्री रामचन्द्र जी के समय उनके छोटे भाई लक्ष्मण जी 'लोकपाल' थे । हेमकुण्ड में एक तरफ तो गुरु गाविन्द सिंह जी की तपस्या स्थली है और गुरुद्वारा बनाया गया है तो दूसरी तरफ लक्ष्मण जी की तपस्या स्थली भी है और यहाँ लक्ष्मण मंदिर भी है । इस संबंध मैं छोटी-सी कथा प्रचलित है । त्रेतायुग में अंत में पृथ्वी का भार उतारकर भारत में सनातन धर्म की स्थापना करके रामचन्द्रजी ने जब साकेत जाने की तैयारी करनी शुरू की तो मंत्रणा के लिये 'महाकाल' को अपने पास बुलाया और लक्ष्मण को निर्देश दिया कि किसी भी व्यक्ति को चाहे वह कितना भी महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, अंदर जाने की आज्ञा न दें अन्यथा उन्हें अयोध्या से निष्कासित होना पड़ेगा । थोड़ी देर बाद दुर्वासा मुनि का आगमन हुआ । लक्ष्मण अर्तद्वन्द्व में पड़ गये । दुर्वासा मुनि के क्रोध से सभी परिचित हैं । अतः लक्ष्मण ने निश्चय किया दुर्वासा मुनि के शाप से राम का क्रोध सहना श्रेयस्कर है । अतः वे राम को सूचना देने गये । आज्ञा अवहेलना के दंडस्वरूप लक्ष्मण को अयोध्या से निष्कासित कर दिया गया । लक्ष्मण जी ने राम की आज्ञा शिरोधार्य कर हिमालय में विचरते हुए गन्धमादन पर्वत के शिखरों में सुन्दर सरोवर हेमकुण्ड के समक्ष निवास किया । और वे गंधर्वराज चित्रसेन से

मैत्री करते हुए हिम सरोवर में ध्यान मग्न होकर तपस्या करने लगे । अंत में साकेत लोक में राम के पास चले गये । तब से इसे 'लोकपाल तीर्थ' कहते हैं । हेमकुण्ड से निकलने वाली जलधारा लक्ष्मण गंगा कहलाती है । जो गोविन्दधाम जाकर अलकनन्दा नदी में मिल जाती है । यह तीर्थस्थल समुद्री सतह से करीब १४,००० फीट ऊँचाई पर है जहाँ अक्टूबर से लेकर मई तक हिमपात होता है । उस समय यह बर्फ के नीचे रहता है । यह अंडाकार हिमसरोवर प्रकृति की अनुपम देन है । और इसे केवल जून से सितम्बर तक ही दर्शन कर सकते हैं।

हम घोड़े पर सवार थे । हमें प्रकृति का अनुपम नैसर्गिक दृश्य देखने को मिला जिसके सामने 'फूलों की घाटी' कुछ भी नहीं है । हरी-भरी वनस्पतियाँ, फर्न के तरह-तरह के पेड़, पहाड़, झरने लक्ष्मण गंगा नदी आदि मिलकर हमें अनोखे लोक का आभास करा रही थीं । मैं 'प्रकृतिम् परमां अभयां वरदाम् !' स्रोत्र जोर-जोर से गाते हुए जा रही थी । यहाँ मनुष्य के षड़ रिपु धूमिल हो जाते हैं । शुद्ध पवित्र वातावरण से मन सात्विक हो जाता है । सभी यात्री, वन वृक्ष फूल पौधे अपने संबंधी लगते हैं । घाटी पर वही लाल, जामुनी फूल कतारों में खिले हुए हैं । हम ऊँचाई पर चढ़ते गये । बीच में हमें झरने को पार करना था । घोड़े कितने अनुशासित होते हैं । बराबर रास्ता देखकर ही चलते हैं । किनारे-किनारे से चलते हैं । कुछ ही देर में हमें ब्रह्मकमल में दिखाई दिये । ये हरे रंग के कमल पुष्प हैं जिन्हें 'देवी' तथा 'शिव' को चढ़ाया जाता है । यह हिमालय के शिखरों पर ही उगता है । हमें झुंड के झुंड ब्रह्मकमल दिखाई दिये । ब्रह्मकमल का क्षेत्र देव कन्याओं का क्षेत्र होता है । इन स्थानों की पवित्रता पर विशेष ध्यान देना पड़ता है । इन स्थानों की यात्रा के, फूल चयन करने का अलग नियम है और उन्हें शतप्रतिशत पालन करना पड़ता है । खाने पीने में शुद्धता बरतनी पड़ती है ।

'ब्रह्मकमल' पुष्प तोड़ने की जिन गावों में पुष्प लाने की परम्परा है वहाँ दो व्यक्ति नियुक्त होते हैं जिन्हें 'फुलारी' कहते हैं । इन्हें दो रिंगाल की नयी पीठ पर लगायी जाने वाली कंडिया दी जाती हैं और दूरी के अनुसार भोजन सामग्री । गाँव से निश्चित समय पर ग्रामवासी उन्हें मंगलगीत गाकर विदा करते हैं । वे लोग निश्चित तिथि को नहाकर नंगे पाँव व्रतधारण करके फूल तोड़ते हैं । फूल तोड़ने के बीच लघुशंका नहीं कर सकते हैं । अगर करना है तो दूर जाकर स्नान करके कुंडी को उठाना पड़ता है । गाँव में पहुँचने पर उनका फ्रिर से ढोल से स्वागत होता है और इन पुष्पों को भगवती नन्दा को चढ़ाया जाता है ।

प्रकृति को निहारते हुए इतनी विभोर हो गई थी कि स्वतः ही माँ सारदा (प्रकृतिं परमास अभयाम वरदाम् का ध्यान जप स्वतः ही हो रहा था । आँख से प्रेमाश्रु थमने का नाम नहीं ले रहे थे । मुझे रजनीकांत का एक बंग्ला गीत बार-बार स्मरण हो रहा था जिसका अर्थ यह है कि 'हे ईश्वर मैं कितना अकृति अधम हूँ फिर भी तुमने मुझे कुछ कम करके दान नहीं दिया है । जो कुछ मुझे दान में दिये हो उसके लिये मैं अयोग्य हूँ फिर भी तुमने वह दान मुझसे नहीं छीना है । सच, ईश्वर की कृपा हम पर कितनी बरसती है, क्या हममें वह कृपा ग्रहण करने की क्षमता है ?

हम कितने ऊँचे पर पहुँच गये ! गुरुद्वारे से शब्द की सुमधुर स्वर-लहरी सुनाई पड़ रही थी । गुरुद्वारा अब दिखाई दे रहा था । दो चार दुकानें थीं, हमने जूते मोजे खोल कर हाथ धोकर सिर ढककर गुरुद्वारे में प्रवेश किया तो मुझे 'विराट्' का आभास हुआ । मन एकदम केन्द्रित हो गया । मैं स्वयं को, परिवार के सदस्यों को भूल गयी । सिर्फ 'विराट' का आभास रह गया । आँखों से प्रेमाश्रु निकल पड़ें । कितनी पवित्रता थी उस स्थान पर। सामने 'गुरु ग्रन्थ साहेब' खुला हुआ था । एक संत पंखा झल रहे थे । दो संत बैठकर शब्द का मधुर गायन कर रहे थे । गुरुद्वारे में काफी ठंड थी। किनारे में कम्बलों के ढेर थे । कोई भी कम्बल लेकर बैठ सकता है । हमने गुरुग्रन्थ साहब के सामने माथा टेका फिर मैंने जप करना प्रारंभ किया । इतने में उनकी पूजा शुरू हुई । गुरुग्रन्थ साहब का पाठ हुआ और प्रसाद में गरम-गरम हलवा मिला । मैं निस्तब्ध बैठी रही। थोड़े समय के पश्चात् हम बाहर आये । कड़ाके की ठंड थी । हम पहले पवित्र स्तम्भ में गये । माथा टेका । फिर थोड़ी ही दूर में पवित्र सरोवर देखा । सरोवर के पीछे सप्तशृंगी पर्वत की परछाईं सरोवर में दिखाई दे रही थी । सरोवर का जल एकदम स्वच्छ था । लोग ठंड में भी पवित्र जल में स्नान कर रहे थे । हम ने श्रद्धापूर्वक जल को अपने सिर पर छिड़का व पात्र में भरकर मुम्बई के लिए लिया ।

अब हम पास में ही स्थित लक्ष्मण मंदिर में गये । छोटा सा मंदिर है जिसमें लक्ष्मण जी की छोटी सी प्रस्तर मूर्ति है । यह मूर्ति अधिकांश जलाशय में निमग्न रहती है । कई प्रत्यक्षदर्शी इस बात का प्रमाण देते है। इस मूर्ति को एक काला नाग फन की छाया किये हुए रक्षा करता है। यह लक्ष्मणजी के शेषअवतार होने का संकेत है । यहाँ पर भ्यूभंडार से लोग भाद्र महीने में लक्ष्मणजी की पूजा के लिये भोग आदि लेकर आते हैं।

यहाँ पर काले कौवे, गोरैया जाति के पक्षी और चीलें दिखाई देती है । गौरेया पक्षी सरोवर को साफ करने में मदद करता है । दो तरह की मकड़ी चूहे और सफेद शेर कभी-कभी दिखाई पड़ते हैं ।

सरोवर में देवता आदि को स्नान करते हुए ऋषि मुनियों ने देखा है और सरोवर के किनारे हीरे मोती जवाहरात रात को दिखाई देते हैं । इस अद्‌भुत सरोवर का दर्शन करने के पश्चात् हमारा जीवन धन्य हो गया। केवल माँ ठाकुर को धन्यवाद दिया । वहीं पास में लंगर है । हमें गरम-गरम चाय और खिचड़ी प्रसाद के रूप में मिली ।

अब हमारे लौटने की बारी है । लौटते समय काफी कष्टप्रद यात्रा है । घोड़े पर शरीर का संतुलन बनाये रखना पड़ता है नहीं तो छिटक कर खाई में गिरने की संभावना है । रास्ते में ही मैने प्रतिज्ञा की थी कि अगर यह कठिन यात्रा सुव्यवस्थित ढंग से सुरक्षित रूप से पूरी हो जाय तो मैं पूरी गीता का पारायण करूँगी । हम सुरक्षित रूप से घांघरिया पहुँचे । लौटते समय बस थोड़ी सी बारिश मिली । वहाँ एक दिन हमने विश्राम किया । दूसरे दिन गोविन्द धाम के लिये उतरे और वहाँ पहुँच कर पुल पार किया । हमने गुरुद्वारे से 'फिरनी' प्रसाद लिया । फिर भोजन किया । हमें जोशी मठ के लिये जल्दी ही बस मिल गयी । जोशी मठ में एक दिन रूककर गीता का पारायण किया और हम हरिद्वार होते हुए मुम्बई लौट आये ।

हेमकुण्ड साहब की यात्रा यहीं समाप्त हुई और यात्रा से मनोबल, पवित्रता और मन की सुन्दरता का विकास हुआ । ठाकुर से यही प्रार्थना है कि दीर्घसमय तक यह सुन्दरता और पवित्रता बनी रहे । जय माँ । जय ठाकुर ।

❑

दया धर्म का मूल है

महाराष्ट्र के सन्त एकनाथजी के यहाँ श्राद्ध था। खीर-हलवा आदि पकवान बने थे। उनकी मीठी सुगन्ध के कारण एक महार (अस्पृश्य) दम्पत्ति वहाँ आ पहुँचा। उनके साथ एक छोटा बालक भी था। वह अपनी माता से बोला, 'माँ ! यहाँ तो बढ़िया पकवान बने हैं और मुझे जोरों से भूख लगी है।' माँ ने कहा, 'पर बेटा, हमारे भाग्य में ये पकवान कहाँ हैं ? ये तो ब्राह्मणों के लिए होंगे। हमें तो बचा-खुचा ही मिलेगा।'

ये शब्द सुनते ही एकनाथजी का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने सोचा, 'हरिजन हरि के भक्त होते हैं और सबका शरीर भगवान् का मन्दिर है। यदि इन्हें ही भोग लगाया जाए, तो क्या वह भगवान् को भोग लगाना नहीं होगा ?' और उन्होंने पत्नी से उस दम्पत्ति को भोजन परोसन के लिए कहा। पत्नी गिरिजाबाई पति के समान ही धर्मपरायणा थी। उसने महार दम्पत्ति को पेटभर भोजन परोसा और पान-सुपारी देकर उन्हें विदा किया।

एकनाथजी ने अपनी पत्नी से उस स्थान पर जल छिड़कने और दूसरा भोजन बनाने के लिए कहा, किन्तु महार-दम्पत्ति द्वारा भोजन करने की बात जब ब्राह्मणों को मालूम हुई, तो उन्होंने भोजन करना अस्वीकार कर दिया। एकनाथजी ने उन्हें बताया कि उन्होंने उस महार-दम्पत्ति को भूखे होने के कारण ही भोजन कराया था। वह भोजन उच्छिष्ट हो जाने के कारण अब उन्होंने दूसरा भोजन बनाया है, किन्तु काफी अनुनय-विनय करने पर भी ब्राह्मण न माने और उन्होंने भोजन का बहिष्कार कर दिया।

एकनाथ जी बड़े दुःखी हुए कि ब्राह्मण बिना भोजन किये ही चले गये। तब उनके एक सम्बन्धी ने उनसे कहा, 'आपने यह भोजन तो पितरों के लिए बनाया था, न कि ब्राह्मणों के लिए, इसलिए आप क्यों दुःखी होते हैं ? आज अपने पितरों को ही सीधे क्यों आमंत्रित नहीं करते ?' बात एकनाथजी को जँच गयी और उन्होंने पत्नी से पत्तल लगाने के लिए कहा। भोजन परोसे जाने पर उन्होंने पितरों से 'आगतम्' कहा और लोगों को यह देख आश्चर्य हुआ कि उनके पितर सूर्यनारायण, चक्रपाणि और भानुदास वहाँ आ गये और उन्होंने अपने-अपने आसन पर बैठकर भोजन किया तथा तृप्त हो एवं आशीर्वाद दे वे अंतर्धान हो गये। यह बात जब उन ब्राह्मणों को मालूम हुई, तो उन्हें अपने किये पर पश्चाताप हुआ और उन्होंने एकनाथजी से क्षमा माँगी।

❑

रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा में धर्म सभा

छपरा: स्थानीय रामकृष्ण मिशन आश्रम में त्रिदिवसीय धर्म सभा का आयोजन १० से १२ सितम्बर तक किया गया। १० सितम्बर को छपरे के निकट नैनी गाँव में प्रातः १० से १२ बजे तक मिड्ल स्कूल के प्रांगण में रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद के अध्यक्ष स्वामी त्यागात्मानन्द जी महाराज ने बड़ी संख्या में उपस्थित स्थानीय उच्च एवं मध्य विद्यालय के छात्र-छात्राओं एवं नागरिकों को सम्बोधित करते हुए श्रीरामकृष्ण एवं श्री माँ सारदा के जीवन एवं सन्देशों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ही मानव जीवन हमें मिला है। हम पशु से श्रेष्ठ इसलिए हैं कि आहार, निद्रा, भय मैथुन से बढ़कर हममें विवेक-बुद्धि है, धर्म साधना की शक्ति है और हमारे सामने सत्यपथ पर चलने का विकल्प है। आरम्भ में डॉ० केदारनाथ लाभ ने रामकृष्ण मिशन के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए छपरा आश्रम की गतिविधियों की जानकारी दी। सभा की अध्यक्षता स्थानीय मुखिया श्री नित्यानन्द सिंह ने की। ब्रह्मचारी परिमुक्त चैतन्य, श्री मधुकर लाल कर्ण, श्री बबन सिंह आदि ने विवेकानन्द चित्र-प्रदर्शनी एवं पुस्तक प्रदर्शनी के संचालन तथा सभा के आयोजन में भरपूर सहयोग किया। छपरा आश्रम के सचिव स्वामी मुनीश्वरानन्द एवं स्थानीय वरिष्ठ नागरिक एवं शिक्षकगण सभा में उपस्थित थे।

१० से १२ सितम्बर की संध्या को आश्रम परिसर में स्वामी त्यागात्मानन्द जी ने रामचरित मानस के विभिन्न पक्षों पर बड़ा ही प्रभावकारी प्रकाश डाला।

११ सितम्बर को प्रातः महर्षि गौतम उच्च विद्यालय, रिविलगंज में छात्र छात्राओं के बीच स्वामी विवेकानन्द के विचारों को प्रस्तुत करते हुए स्वामी त्यागात्मानन्द जी ने छात्र-छात्राओं में समाज सेवा, देश सेवा की भावना जागृत करने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने कहा कि यूँ तो नारी के अनेक रूप हैं परन्तु माँ स्वरूप में नारी का चरित्र महान हो जाता है। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्री माँ सारदा एवं स्वामीजी के जीवन और संदेश पर विस्तार से बोलते हुए उनके आदर्शों एवं उपदेशों को अपनाने का आग्रह उपस्थित श्रोताओं से किया।

यहाँ भी आरम्भ में डॉ० केदारनाथ लाभ ने रामकृष्ण मिशन के कार्यों और उद्देश्यों की आरम्भ में व्यापक चर्चा की तथा शिव भाव से जीव सेवा करने के स्वामीजी के संदेश पर प्रकाश डाला।

सभा की अध्यक्षता विद्यालय के प्रधानाध्यापक अवधेश कुमार सिंह ने की, सभा के आयोजन में श्री बबन सिंह ने स्मरणीय योगदान किया। सभा में विद्यालय के अनेक शिक्षक उपस्थित थे।

१२ सितम्बर को पूर्वाह्न में आश्रम में धर्म शिविर का आयोजन हुआ। भजन, कीर्त्तन, धर्मग्रंथ पाठ आदि के उपरान्त स्वामी त्यागात्मानन्द जी ने मुख्य वक्ता के रूप में प्रभावोत्पादक व्याख्यान दिया। संध्या आरती के पूर्व उन्होंने सारदा संघ द्वारा आयोजित रोचक कार्यक्रम में भाग लेकर महिलाओं को संबोधित किया। इसका आयोजन श्रीमती शशि प्रभा ने किया। शाम को रामचरित मानस की प्रासंगिकता विषय पर स्वामीजी ने विचारोत्तेजक व्याख्यान दिया। समस्त कार्यक्रमों में प्रेरक शक्ति के रूप में स्वामी मुनीश्वरानन्द जी उपस्थित थे। डॉ० केदारनाथ लाभ ने अंतिम सत्र में धन्यवाद ज्ञापन किया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची में विविध आयोजन

१. सर्वधर्म सभा

राँची : ११ सितम्बर २००४ को सर्व धर्म सभा का आयोजन हुआ। श्रीमत् स्वामी स्मरणानन्द जी, महासचिव, रामकृष्ण मठ और मिशन, बेलूड़ मठ ने अध्यक्षता की हिन्दूधर्म पर प्रो० रत्ना बनर्जी, सिख धर्म पर श्रीमती नीलिया कौर, इसलाम पर श्रीमती सकीना अफजल अहमद, ईसाई धर्म पर सिस्टर प्रभा, बुद्ध धर्म पर कुमारी सुषमा यादव तथा जैन धर्म पर श्रीमती ज्योति रामपुरिया ने विस्तार से भाषण दिया।

२. माँ सारदा की १५०वीं जयन्ती

१३ सितम्बर को माँ सारदा की १५०वीं जयन्ती आश्रम परिसर में मनायी गयी। झारखण्ड के राज्यपाल महामहिम वेद प्रकाश मारवाह मुख्य अतिथि थे। और सभा का उद्घाटन स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज ने किया। स्वामी शशांकानन्द जी ने धन्यवाद ज्ञापन दिया।

भगवान् श्रीरामकृष्ण का सार्वजनीन मन्दिर

नम्र निवेदन

प्रिय, भक्तजन एवं सज्जनो !

नागपुर नगर में स्थित रामकृष्ण मठ स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण संघ का ही एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है जो पिछले ७४ वर्षों से भगवान् श्रीरामकृष्ण देव के आदर्शवाक्य 'शिवज्ञान से जीवसेवा' को उद्देश्य मानकर जनता की अनेकविध सेवाओं में प्रयत्नशील रहा है।

मठ का वर्तमान मन्दिर जीर्ण-शीर्ण होने तथा भक्तों की बढ़ती संख्या से प्रार्थना-कक्ष छोटा पड़ने के कारण विवश होकर हमने पुराने भवन के स्थान पर ही संकल्पित बड़ा मन्दिर का निर्णय लिया है जिसके विवरण निम्नलिखित हैं–

मन्दिर की लम्बाई एवं चौड़ाई	११७'×४८'
मन्दिर की ऊँचाई	६७'
गर्भ-मन्दिर (पूजागृह)	१८'-६"×१८'-६"
उपासना कक्ष (५०० भक्तों के बैठने के लिये)	६७'×४०'
दोनों ओर के बरामदे	६७'×४'
मन्दिर-तलघर एवं सभा भवन	९१'-६"×५१

इस समस्त निर्माण कार्य पर लगभग तीन करोड़ रुपयों के व्यय के लिये यह मठ जन-साधारण से मिले दान पर ही निर्भर है। अतः आपसे हमारा आन्तरिक अनुरोध है कि मानवता की सर्वांगीण उन्नति हेतु प्रस्तावित इस योजना के लिए आप **उदारतापूर्वक दान** दें।

भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का आप सभी पर आशीर्वाद रहे, इस प्रार्थना सहित–

कृपया ध्यान दें–

दान की राशि डी.डी./चेक द्वारा रामकृष्ण मठ, नागपुर के नाम पर भेजे। दान की राशि आयकर की धारा ८०–जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त होगी। विदेशी मुद्रा में दिया गया दान भी स्वीकार किया जाएगा।

प्रभु की सेवा में,

(स्वामी ब्रह्मस्थानन्द)

अध्यक्ष

रामकृष्ण मठ, धंतोली, नागपुर

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर–४४० ०१२

फोन : २५२३४२२, २५३२६९०, फैक्स : २५३७०४२

ई.मेल : rkmath@nagpur.dot.net.in

डाक पंजीयित संख्या – सी.एच.पी. १४-८३

CHP/P (N)/–14/02

हमारा हिन्दी प्रकाशन

शिवानन्द स्मृतिसंग्रह

भगवान श्रीरामकृष्णदेव के अंतरंग पार्षद
स्वामी शिवानन्दजी महाराज के संस्मरण

तीन खण्डों में

प्रत्येक खण्ड का मूल्य रु. ५०.००

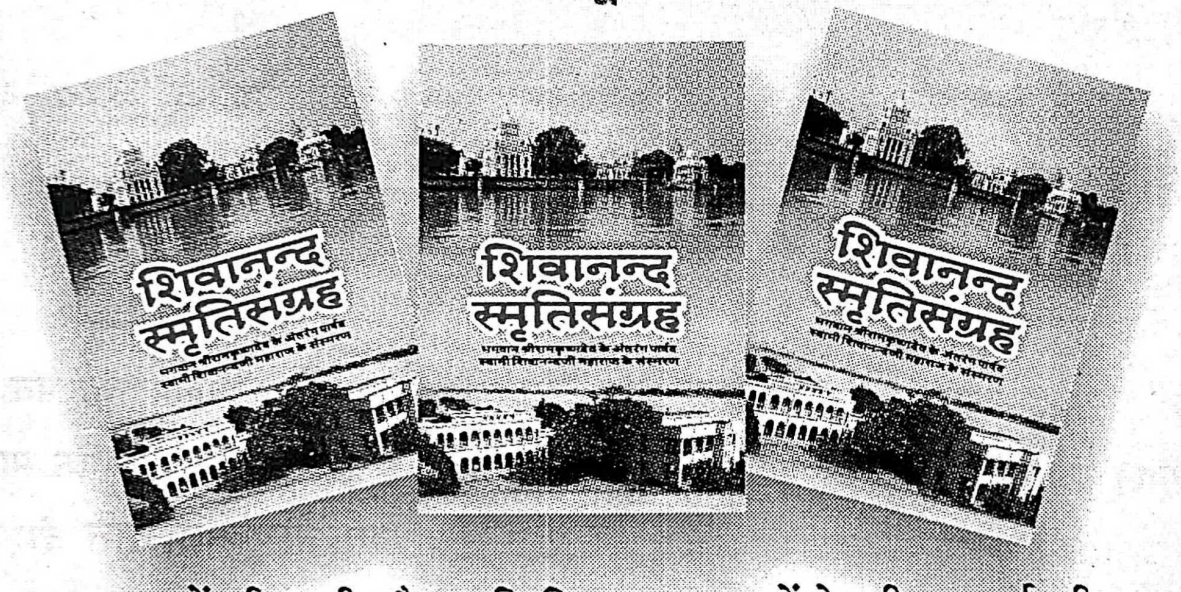

तत्त्वज्ञ महापुरुषों की वाणी और स्मृति त्रितापदग्ध मनुष्यों के जीवन-मार्ग की अमूल्य सम्पत्ति है। आत्मज्ञ पुरुषों के चरणों में बैठने का सौभाग्य अपरिमित पुण्यों के फलस्वरूप ही मिलता है। ऐसे ही महानुभावों ने इस ग्रन्थ के लिए अपने पवित्र स्मृति से विभिन्न प्रबन्ध लिखे हैं। यह ग्रन्थ संसार-ताप से तप्त मनुष्यमात्र के हृदय में शान्ति, आशा और उद्दीपन जागृत करनेवाला है।

अधिक जानकारी के लिए लिखें :

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२

डॉ. केदारनाथ लाभ, रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)
द्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित तथा विवेकानन्द
ऑफसेट प्रिन्टर्स, छपरा – ८४१३०१ में मुद्रित।

मुद्रक : वृषाली ऑफसेट, नागपूर-१८